Chap - 3

तृतीय अध्याय

दलित जीवन पर आधारित

प्रेमचंद की कहानियाँ

प्रास्ताविक : ---

आधुनिक काल के साहित्य का यदि कोई सर्वोपरि अभिलक्षण है, तो वह है धर्म और समाज को देखने का एक मानवतावादी दष्टिकोण। इस दृष्टिकोण के कारण आधुनिक साहित्य में दो मुद्दों पर ध्यान अधिक केन्द्रित रहा है- नारी विमर्श और दलित विमर्श। प्रेमचंदजी का चिंतक निरन्तर विकास की ओर अग्रसरित रहा है। आर्यसमाज, गांधीवाद और मार्क्सवाद में उनको क्रमशः प्रभावित किया है। प्रारंभ से ही प्रेमचंद में हमें कुछ प्रगतिशील आयाम दृष्टिगोचर होते है। प्रेमचंद कें समय में समाज की जो स्थिति थी उससे उनके भीतर की संवेदना बुरी तरह से हिल गई थी। अतः वे कुछ ऐसा लिखना चाहते थे जिसे की समाज में कुछ बदलाव आवे। उनकी उन दिनों की अंतर्व्यथा को अम्रतरायजी ने उनकी जीवनी

"कलम का सिपाही" में निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यंजित किया है-
"ठीक है उनसे (राजा-रानी, तिलस्मी और एय्यारी के किस्से) दिल बहलाव होता है, मगर सवाल यह है कि हम आखिर कब तक इसी तरह दिल बहलाव करते रहेंगे। इस तरह तो इतिहास के पन्नों से हमारा नाम ही मिट जायेगा। जरा अपने समाज की हालत भी तो देखो-कैसे मुर्दे की नींद सो रहा है ! उसका दिल बहलाने की जरूरत है कि झकझोरकर उसको जगाने की ?...... अगर कुछ लिखना ही है तो ऐसा लिखो जिससे यह मौत ओर गफलत की निंद कुछ तूटे, यह मुर्दनी कुछ दूर हो। कितनी बुरी हालत है हमारे हिन्दू समाज की। आदमी को आदमी नहीं समझा जाता। एक आदमी के छू जाने से दूसरे आदमी की जातचली जाती है। यह क्या जिंदा कौमो के लक्षण है ?" [१]

उपर्युक्त उद्धरण से हमें यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि हमारे समाज की ऋग्णावस्था को लेकर प्रेमचंद जी शूरू से ही व्यथित थे। समाज में स्त्रियों और अछूतों की अवस्था को लेकर उनका मन हंमेशा द्रवित रहा है। इस संदर्भ में प्रेमचंद जी हंमेशा दलितों की तरफदारी करते रहे हैं। सन् १९३२ के नवम्बर में काशी के सनातनधर्मी नेताओं ने अछूतों के मंदिर प्रवेश के विरूद्ध जुलूस निकाला तो प्रेमचंद "जागरण" के २१ नवम्बर १९३२ अंक के संपादकों में उन पर बुरी तरह से बरस पड़ते है। गांधीजी अपने इन विरोधियों के साथ बड़ी शालीनता से पेश आते थे और उनसे हर समय बातचीत के लिए तैयार रहते थे परंतु प्रेमचंदजी इस मामले में उतने सहिष्णु न थे उन्होंने पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व में निकले इस जुलूस को "जाति के दलित और पीड़ित अंग को ठोकर मारने" वालों की संज्ञा देते हुए लिखा :

"फिर क्यों न धर्म का संसार में ह्रास हो, क्यों न रूसवाले धर्म को अफीम का नशा समझे, क्यों न गिरजे ढाये जाए और धर्म को कलंकित करनेवाले इन स्तंभो का समाज से बहिष्कार किया जाय।"[२] गांधीजी अपने समय के इन सनातन धर्मी रूढिचुस्त तत्वों के हृदय परिवर्तन का

प्रयत्न करते थे, परंतु उनके सामाजिक बहिष्कार की बात वे सोच भी नहीं सकते थे। यह उग्रता प्रेमचंद की अपनी उग्रता है जो दलित जातियों के प्रति जुड़ी उनकी मानवीय संवेदना का परिणाम है। अपनी उसी संपादकीय टिप्पणी में प्रेमचंद गांधीजी के शब्दों में धर्म के मूलतत्व के रूप में "आत्मा की एकता" को तो मान्य रखते है परंतु उसके साथ अपनी एक विशेष टिप्पणी जोड़ देते है- "जो आदमी इस तत्व को नहीं समझता वह वेदों और शास्त्रों का पंड़ित होने पर भी मूर्ख है, जो दुखियों के दुःख से दुःखी नहीं होता, जो अन्याय देखकर उत्तेजित नहीं होता, जो समाज में ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र के भेद को बढाता है, वह पंडित होकर भी मूर्ख है।" [३]

इसी संपादकीय के अंत में प्रेमचंद अछूतों के प्रति अपनी पक्षधरता और परोपजीवी ब्राह्मण निहित स्वार्थों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करते है। यह उग्रता और उदग्रता गांधीजी में नहीं मिलती। यथा-"....किसी ब्राह्मण महाजन के पास उसी का भाई ब्राह्मण असामी कर्ज मांगने जाता है, ब्राह्मण महाजन एक पाई भी नहीं देता, उस पर उसका विश्वास नहीं है। उसी ब्राह्मण महाजन के पास एक अछूत असामी जाता है और बिना किसी लिखा-पढ़ी के रुपये ले आता है। ब्राह्मण को उस पर विश्वास है। वह जानता है, यह बेईमानी नहीं करेगा। ऐसे सत्यावादी, सरल हृदय, भक्ति-परायण लोगों को हम अछूत कहते हैं, उनसे घृणा करते हैं, मगर हमारा विश्वास है, हिंदू समाज की चेतना जागृत हो गयी है, अब वह ऐसे अन्यायों को सहन न करेगा राष्ट्रों के जीवन का रहस्य उसकी समझ में आ गया है, वह ऐसी नीति का साथ न देगा, जो उसके जीवन की जड़ काट रही है।" [४]

उन्हीं दिनों में नागपुर में हरिजन बालकों के लिए एक अलग छात्रावास बनाया गया था। पाँच दिसम्बर १९३२ के जागरण में प्रेमचंदजी ने इस संदर्भ में अपनी एक छोटी सी टिप्पणी दी है। परंतु प्रेमचंदजी की यह टिप्पणी उनकी एतद्विषयक जागृक्ता और सूक्ष्मदृष्टि को रेखांकित करती है :

"नागपुर में हरिजन बालकों के लिए अलग एक छात्रालय बनाया गया

है। इससे तो अछूतपन मिटेगा नहीं, और दृढ़ होगा। उन्हें तो साधारण छात्रालयों में बिना किसी विचार के स्थान मिलना चाहिए।" [५]

जागरण के २६ दिसम्बर के अंक में "पावन तिथि" शीर्षक से जो संपादकीय प्रेमचंदजी ने लिखी थी उसमें उन्होंने सभी धर्मों के मूल में "मनुष्य मात्र की समानता" का आग्रह रखा है। अपनी बात को वे इस प्रकार रखते है : ".....धर्मों की सृष्टि का यही उद्देश्य था। इसी एक व्यवस्था में सारे आध्यात्मिक, नैतिक, दैहिक और मानसिक सिद्धांत समाविष्ट हो जाते है। जब मानव-समाज में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, का भेद बढ़ा, एक नये धर्म का उदय हुआ। ....इस तत्व की उपेक्षा करके समाज में शांति नहीं रह सकती। या तो किसी नये धर्म की सृष्टि होगी या कोई भयंकर विप्लव हो जाएगा। फ्रेंच-क्रांति इसी विषमता की फरियाद थी, रूस की क्रांति भी इसी भेद-भाव का रूदन था। मनुष्य-मात्र में जो एक आत्मा व्याप्त है, वह इस विषमता को सहन नहीं कर सकती।" [६]

प्रेमचंदजी अछूत समस्या के आर्थिक पक्ष को हमेशा केन्द्र में रखते है। उनका मानना था कि अछूत समस्या को हल करने के लिए हमें उनके आर्थिक स्तर को उपर उठाना ही होगा। कोई भी वर्ग या वर्ण जबतक आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं हो जाता तब तक उसकी अन्य समस्याओं का कोई हल नहीं निकल पाता। केवल मंदिर प्रवेश से हरिजनों की समस्याका हल नहीं होगा, ऐसा प्रेमचंदजी का दृढ़ विश्वास था। इस संदर्भ में उनके निम्नलिखित विचारों को रेखांकित किया जा सकता है :

"हरिजनों की समस्या केवल मंदिर प्रवेश से हल होनेवाली नहीं है। उस समस्या की आर्थिक बाधाएँ धार्मिक बाधाओं से कहीं कठोर है। .... असल समस्या तो आर्थिक है। यदि हम अपने हरिजन भाइयों को उठाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठने में मदद दें। विद्यालयों में उनके लिए वजीफे करने चाहिए। हमारे जमींदारों के हाथ में उनकी दशा सुधारने के बड़े-बड़े उपादान है। उन्हें घर बनाने के लिए काफी जमीन देकर, उससे बेगार लेना बंद करके, उनसे सज्जनता और

भलमनसी का बरताव करके वे हरिजनों की बहुत कुछ कठिनाइयां दूर कर सकते हैं। समय तो इस समस्या को आप की हल करेगा, पर हिंदू जाति अपने कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ सकती।" ७

सन् १९३३ के मई अंक में प्रेमचंदजी अछूत समस्या को लेकर जागरण में लिखते है :

"क्या अब भी हम अपने बड़प्पन का, अपनी कुलीनता का ढिंढोरा पीटते फिरेंगे। यह ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद हिंदू जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। ... हम आदमी पीछे हैं, चौबे या तिवारी पहले। ...यह दंडवत् की समस्या भी आयु के आधार पर या अन्य किसी आधार पर हल करनी होगी। उसका सांप्रदायिक आधार नष्ट करना होगा। ... हमें इन छोटे-छोटे भेदपोषक साधनों का संस्कार करना होगा, उन्हें उस अग्निकुंड में डालना होगा, जो महात्मा गांधी ने अपने तेज से प्रज्वलित किया है। एक दिन झाड़ू हाथ में लेकर सड़कों पर तमाशा कर देने से यह अहंकार न मिटेगा, जो हरिजनों के अछूतपन का मुख्य कारण है। इसकी गहरी जड़ों को खोदकर समाज से निकालना होगा।" ८

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि सन् १९३२ में मुंशी प्रेमचंद महात्मा गांधी द्वारा प्रर्वतीत मंदिर प्रवेश सत्याग्रह का बिना किसी शर्त के समर्थन भी कर रहे हैं, और साथ-साथ डंके की चोट यह भी कह रहे है कि अछूतों की असल समस्या आर्थिक समस्या है और उसे सुलझाये बिना अछूत समस्या का कोई हल नहीं निकल सकता यह मुंशी की प्रगतिवादी दृष्टि का परिणाम है। २३ जनवरी १९३३ के "जागरण" में "अस्पृश्यों की महत्वाकांक्षा" शर्षिक संपादकी में उन्होंने लिखा था : "हमारे पास कलंत आश्रम, जाफराबाद के हरिजन सेवक श्री हरिजनदास कलन्त का एक पत्र आया है जिसमें वे लिखते है कि, "आज में वर्षों से हरिजनों की सेवामें अपना प्राण लगा रहा हूँ। मेरा यह अनुभव है कि हरिजन मंदिर-प्रवेश के लिए इतने उत्सुक नहीं है जितना अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए। वे चाहते है कि अपने गृह-उद्योग द्वारा वे स्वतंत्र हो जावे। उनकी

माली हालत सुधरे। इसलिए हम चाहते है कि मशीनरी की उत्पत्ति पर कर लगा दिया जाय। गृह-उद्योग तभी पनपेगा और तब हम तभी सुधार सकेंगे।" ....हरिजनों के इन उदार विचारों के लिए हम उन्हें बधाई देते है। फिर भी, वे चाहें या न चाहें, हम उन्हें मंदिर प्रवेश का अधिकार देना ही चाहते है। रह गयी गृह-उद्योग की बात। इस विषय में उनके विचारों को हम समर्थन करते हैं। जब उनके पास पैसा होगा तो भोजन-भट्ट ब्राह्मण और भिक्षु-विप्र भी उनकी उन्नत मानने लगेंगें।" [९]

धार्मिक अंधविश्वास और कठमुल्लापन की ताकतें (Fundamentalista) न सिर्फ गांधी जी पर हमला कर रही थी, बल्कि प्रेमचंद जैसे उनके समर्थक पर भी इन लोगों के हमले के शिकार हो रहे थे। कुछ लोग प्रेमचंदजी को "घृणा के प्रचारक" मानते थे तब उन्होंने सन् १९३३ के "हंस" के दिसम्बर अंक में "जीवन और साहित्य में घृणा का स्थान"शीर्षक संपादकीय लिखा था जिसमें उन्होंने घृणा की सामाजिक उपयोगिता को रेखांकित किया था। यथा "पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियों के प्रति हमारे अंदर जितनी ही प्रचंड घृणा होगी उतनी ही कल्याणकारी होगी। घृणा के शिथिल होने से ही हम बहुधा स्वयं उन्हीं बुराइयों में पड़ जाते है और स्वयं वैसा ही घृणित व्यवहार करने लगते है। जिसमें प्रचंड घृणा है, वह जान पर खेलकर भी उनसे अपनी रक्षा करेगा और तभी उनकी जड़ खोदकर फेंक देने में वह अपने प्राणों की बाजी लगा देगा। महात्मा गांधी इसीलिए अछूतपन को मिटाने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर रहे हैं कि उन्हें अछूतपन से घृणा है।" [१०]

इसी संपादकीय में अपने वक्तव्य की तर्क संगतता प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंदजी अपना अभीमत स्थापित करते है। यथा "प्राचीन साहित्य धर्म और ईश्वरद्रोहियों के प्रति घृणा और उनके अनुयायियो के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भावों की सृष्टि करता रहा। नवीन साहित्य समाज का खून चूसनूवालों, रंगे सियारों, हथकंडेबाजों और जनता के अज्ञान से अपना

स्वार्थ सिद्ध करने वालों के विरूद्ध उतने ही जोर से आवाज उठा रहा है और दीनों, दलितों, अन्याय के हाथ सताये हुओं के प्रति उतने ही जोर से सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है।" ११

यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्रेमचंदजी की विचारधारा में क्रमशः विकास और परिवर्तन के तत्व विद्यमान है प्रेमचंदजी प्रारंभ में आर्यसमाजी विचारों से प्रभावित होते है, वहाँ से वे गांधीवादी विचारों की ओर मूड़ते है। जहाँ तक अछूत समस्या का प्रश्न है मुंशी प्रेमचंद और गांधीजी थोड़े नरम और उदारमतवादी है। वे हृदयपरिवर्तन के सिद्धांत में विश्वास रखते है परंतु सन् १९३४ आते-आते प्रेमचंदजी मार्क्सवादी चिंतन की ओर अग्रसरित होते है। जन्मगत् वर्णव्यवस्था तो गांधीजी भी नहीं मानते थे परंतु "श्रमिको और किसानों के साम्राज्य"की कल्पना गांधीजी की नहीं प्रेमचंद की नीजि कल्पना है जो उनके मार्क्सवादी चिंतन को उद्घाटित करती है। इस बिंदु पर आकर प्रेमचंदजी कहते है - "हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि हम सामाजिक जुए से भी, इस पाखंडी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कहीं घातक है, और हमें आश्चर्य होता है कि निर्मल जी और उनकी मानेवृत्ति के अन्य सज्जन कैसे इस पुरोहितो शासन का समर्थन कर सकते है।" १२

यहाँ पर प्रेमचंद गांधीवादी सीमा का अतिक्रमण करते हुए दृष्टिगत होते है। गांधीजी का कहना था कि हिन्दू लोग अछूतों को स्वराज्य देकर ही अंग्रेजों से स्वराज्य की माँग करने के हकदार बनते है, लेकिन प्रेमचंद इस पूरे सवाल को एक-दूसरे अंदाज से रखते है कि गोया समाजिक स्वाधीनता के बिना राजनीतिक स्वाधीता का कोई मतलब नहीं है। प्रेमचंद की दृष्टि में राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद, धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है। इस प्रकार यहाँ आकर प्रेमचंदजी पूर्णरूपेण वामपंथी विचार-धारा से स्वयं को जोड़ देते है।

अछूत जातियों को लेकर प्रेमचंदजी के जो विचार है वे उनके उपन्यासों

में भी कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बित हुए है । हिन्दू समाज में वैश्या की स्थिति अछूतों से भिन्न नहीं है "सेवासदन" उपन्यास की नायिका सुमन ब्राह्मण जातिकी है कोठे पर बैठकर भी केवल अपना संगीत बेचती है, शरीर नहीं तथापि समाज के लिए तो वह कस्बीन अर्थात वैश्या ही है । हिन्दू समाज में मल्लाहों को अछूत ही माना जाता है लेकिन जब उन्हें भी जितन कहार से सुमन का पुराना इतिहास पता चलता है तो वे न सिर्फ उसे बल्कि उसके बहानोई सदन और शांता को भी अछूत मानने लगते है क्योंकि सुमन इन्हीं लोंगों के यहाँ रह रही है । इसका बड़ा सटीक चित्रण प्रेमचंद ने किया है- "अरे ! यह तो कस्बीन है, खसम ने घर से निकाल दिया तो चौक में हरजाईपन करने लगी, अब देखता हूँ तो यहाँ विराजमान है । चौधरी सन्नाटें में आ गया, मल्लाहिनों में भी इशारेबाजियाँ होन लगीं । इस दिन से कोई मल्लाहसदन के घर का पानी न पीता, उनकी स्त्रियों ने सुमन के पास आना-जाना छोड़ दिया ।" [१३]

दलितजातियों के प्रति सराकर तथा पुलिस के अधिकारियों का रवैया भी अच्छा नहीं होता है, वे लोग इनका भरपूर शोषण करते है इनसे बेगार करवाते है और उपर से मारपीट भी करते है । "प्रेमाश्रम" उपन्यास में उसका एक चित्र इस प्रकार मिलता है- "एक चमार बोला, दिन-भर घास छीला, अब कोई पैसे ही नहीं देता । घंटो से खड़े चिल्ला रहे है । तहसीलदार ने क्रोधोन्मत होकर कहा, आप यहां से चले जाएँ, वर्ना आपके हक में अच्छा न होगा । नाजिरजी, आप मुँह क्या देख रहे हैं ? चपारसियों से कहिए , इन चमारों की अच्छी तरह खबर लें । यही इनकी मजबूरी है । चपरासियों ने बेगरों को घेरना शुरू किया । कांस्टेबलों ने भी बंदूकों के कुंदे चलाने शुरू किये । कई आदमियो को चोट आ गयी..." [१४]

"कर्मभूमि" उपन्यास में तो लेखकने अछूतों के मंदिर प्रवेश की समस्या को लिया है इस उपन्यास में स्वामी आत्मानंद, डॉ.शांतिकुमार, अमर, सुखदा आदि पात्र अछूतों के मंदिर प्रवेश का समर्थन करते है, तो ब्रह्मचारी तथा समरकांत जैसे कुछ संकीर्ण पुराण पंथी है जो रीतिरिवाज और शास्त्रों की दुहाई देते हुए उसका विरोध करते है प्रस्तुत उपन्यास में

डॉ.शांतिकुमार एक प्रकार से प्रेमचंद के ही प्रवक्ता है एक स्थान पर अछूतों को संबोधित करते हुए अभिभाषण देते है- ''क्या तुम ईश्वर के घरसे गुलामी करने का बीड़ा लेकर आये हो ? तुम तन मन से दूसरों की सेवा करते हो पर तुम गुलाम हो । तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं । तुम समाज की बुनियाद हो । तुम्हारे ही ऊपर समजा खड़ा है, पर तुम अछूत हो । तुम मंदिरों में नहीं जा सकते ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है ? क्या तुम सदैव इसी भाँति अतीत और दंलित बने रहेना चाहते हो ?....तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है जब तक तुम समझते हो कि तुम्हारा बस नहीं है । मंदिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं है । वह हिन्दू मात्र की चीज है यदि तुम्हें कोई रोकता है तो वह जबर्दस्ती है । मत टलो इस मंदिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो । तुम जरा-जरा सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गँवा देते हो, जान दे देते हो, यह तो धर्म की बात है । धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और सदा प्राणों से होगी ।'' [१५]

इसी प्रकार ''गोदान'' उपन्यास में भी मातादीन और सिलिया वाले प्रसंग को लेकर अछूत विमर्श की चर्चा काफी प्रेमचंद ने की है । मातादीन और दातादीन दोंनों बाप बेंटों का धर्म पूजापाठ और खानपान पर चल रहा था । मातादीन सिलिया चमारिन से सब प्रकार का संबंध रखता है । एक प्रकार से वह उसकी घरवाली ही है । इसमें मातादीन का अपना स्वार्थ है एक स्थान पर झिंगूरी सिंह को कहता है कि उसका उबार तो सिलिया से ही हो सकता है । ब्राह्मण कन्या क्या कर सकती है वह तो बहुर्च बनकर बेडी रहेगी, बहुत हुआ तो रोटीयाँ पका देगी, परंतु यहाँ तो सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है । और मैं उसे रोटी के सिवा क्या देता हूँ ? बहुत हुआ तो साल में एक छोती दे दी । [१६] सिलिया मातादीन के लिए काम करने वाली मशीन मात्र है, अतः एक दिन सिलिया का बाप हरखू सब चमारों को इकट्ठा करके मातादीन के यहाँ हमला बोल देते है । हरखू कहेता है- ''हम आज मातादीन को चमार

बनाके छोड़ेंगे, या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी न किसी के घर जायेगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है; मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुद्दा हम तुम्हें चमार बना सकते है। हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धर्म हमें दो।"[१७]

इस प्रकार चमार मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकड़ा डाल देते हैं। यह "हड्डी" उनके धर्म के मूलतत्व को ही वे नष्ट कर देती है। इस प्रकार चमार मातादीन और दातादीन को उनके ही हथियारों से मात देते है। हड्डी के इस टूकडे ने मातादीन को अछूत बना दिया अब उसे अपने ही घर में अछूत समझा जायेगा जो लोग उसे पालागन करते थे उसे देखते ही मुँह फेर लेंगे वह किसी मंदिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बर्तन भांडी को छू सकेगा।

इस प्रकार हम देख सकते है कि प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में दलितों की समस्याओं किसी न किसी तरह से आकलित किया गया है। यहाँ प्रस्तुत विवेचन इसलिए आवश्यक हो गया है कि जिस लेखक के विचार इस कदर प्रगतिशील आयामों से युक्त रहे हों उसकी कहानियों में भी उस विचाराधारा के चिन्ह कहीं न कहीं तो मिलेंगें ही। प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम प्रेमचंद की उन कहानियों को रेखांकित करना है जिसमें दलित जीवन का आकलन हुआ है।

(१) ठाकुर का कुआँ :---

प्रस्तुत कहानी "ठाकुर का कुआँ" कहानी संग्रह की प्रमुख कहानी है बाद में यह कहानी "मान सरोवर भाग -१" में संकलित हुई है। यह एक छोटी सी यथार्थवादी कहानी है। उसका प्रकाशन सन् १९३२ में हुआ था।

यह उस युग की कहानी है जब अंग्रेज सरकारने हरिजनों के पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की थी, किन्तु चखडा जेल में गांधीजी ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर ''पूना|पैक्ट'' Poona ~~Pew~~ Pact की सहायता से उस व्यवस्था को बदलवा दिया था इस मुद्दे को लेकर गांधीजी और डॉ.आम्बेडकर दोनों आमने-सामने आ गये थे किन्तु गांधीजी ने आमरण अनसन के हथियार द्वारा डॉ.आम्बेडकर को झुकने के लिए विवश किया था। यह कडवा सत्य उस युग का है जब कॉंग्रेस से लेकर हर प्रकार के सुधारवादी आंदोलन भारतीय समाज में हरिजनों की स्थिति पर मकराश्रु बहा रहे थे। पूना समझौता २६ सितम्बर १९३५ को हुआ था और प्रस्तुत कहानी अक्तूबर १९३२ में प्रकाशित हुई थी। यह भी एक दिलचस्प शोध का विषय हो सकता है कि हमारे निकट अतीत का इतिहास, स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास प्रेमचंद जैसे युगनायक साहित्यकार में किस प्रकार प्रतिबिंबित हुआ है।

यह एक छोटी सी कहानी है गंगी का पति जोखू बीमार है। जोखू दलित जाति का है। उनका कुआँ गाँव से बहुत दूर है। गंगी प्रतिदिन शाम को वहाँ से पीने का पानी भर लाती थी। कल जब वह पानी लायी तो उसमें बू नहीं थी, परन्तु आज उस पानी से भयंकर बदबू आ रही थी। शायद कोई जानवर कुएँ में गिर कर मर गया होगा। परन्तु अब रात के नौ बज चुके थे और इतनी रात गये वह पानी कहाँ से ला सकती है ?। गाँव में दूसरे दो कुएँ है- एक ठाकुर का कुआँ दूसरा साह का कुआँ। वे लोग अछूतों को अपने कुएँ से पानी नहीं भरने देते।

गंगी जोखू को वह बदबूदार पानी नहीं पीने देती, क्योंकि उससे उसकी बिमारी बढ़ सकती है अतः किसी प्रकार साहस जुटाकर गंगी लुकती-छिपाती ठाकुर के कुएँ पर जाती है डरते-डरते अपने देवताओं को याद करते हुए और कलेजे को मजबूत करते हुए गंगी घडे को कुएँ में डाल देती है बहुत धीरे-धीरे उपर खींचती है घड़ा कुएँ के मुँह तक आ गया था कि अचानक ठाकुर साहब का दरवाजा खुलता है और गंगी के हाथ से

रस्सी छूट जाती है। धडाम की आवाज के साथ घडा पानी में गिरता है। ''कौन है? कौन है?'' पुकारते हुए ठाकुर कुएँ की तरफ आते है तब गंगी कुएँ के जगत से कूदकर भाग खड़ी हो जाती है। घर पहुँचकर वह देखती है कि जोखू लोटा मुँह से लगाये मैला-गंदा पानी पी रहा है।

कहानी बहुत छोटी है। कुल तीन पृष्ठों की है परंतु इसमें प्रेमचंदजी ने दलितों की स्थिति को कलात्माक सौंदर्य एवं निरपेक्षता के साथ उकेरा है। गंगी जब घडे को पकड़ रही थी तब ठाकुर का दरवाजा अचानक खुलता है। ठाकुर का डर, देहशत और आतंक कितना है, उसका वर्णन लेखक एक वाक्य में कर देता है- ''शेर का मुँह भी इससे अधिक भयानक न होगा।'' [१८] दलित जातियों पर इनका कितना अत्याचार होता है उसे भी लेखक ने गंगी के चिंतन द्वारा उकेरा है। यथा- ''कुएँ पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक-धक करने लगी। कहीं देख ले, तो गजब हो जाय! एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे में साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर। बेचारे महँगू को इतना मारा कि महीनों लहू थूकता रहा। इसलिए कि उसने बेगार न दी थी।''[१९]

गंगी जब जोखू को बदबूवाला पानी पीने नहीं देती और ताजा पानी भर लाने की बात करती है तब जोखू जो कहेता है उसमें दलितजीवन का कटू यथार्थ छिपा हुआ है। यथा- ''हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबो का दर्द कौन समझता है! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे?'' [२०]

प्रस्तुत कहानी में गंगी के चिंतन द्वारा लेखक ने हमारी जाति-प्रथा पर ऊँच-नीच के झूठे खयालों पर भी चोट की है। यथा- ''हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच है? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते

है ? यहाँ तो कितने हैं, एक से एक छंटे हुए हैं ? चोरी ये करें, जाल फरेब ये करें, झेठे मुकदमें ये करे ! अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया। इन्हीं पंडितजी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे ! कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परंतु घमण्ड यह कि हम ऊँचे है !'' [२१]

प्रस्तुत कहानी के केन्द्र में तो दलित जीवन का कटु यथार्थ है, किन्तु कलागत निपुणता के साथ लेखक यह कहना नहीं चुके है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति भी कुछ-कुछ दलितों जैसी ही है। इसे लेखक ने वहाँ पानी भरने आयीं दो स्त्रियों के कथोपकथन के द्वारा व्यंजित किया गया है- ''खाना खाने चले और हुकम हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं। .... हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है। ....हाँ, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियाँ ही तो हैं। ...लौंडियाँ नहीं तो और क्या हो तुम ? रोटी-कपड़ा नहीं पाती ? दस-पाँच रूपये छीन-झपट कर ले ही लेती हो। और लौंडियाँ कैसी होती है।'' [२२]

गोंविदवल्लभ पंत के उपन्यास ''जूनिया'' में भी दलितों से सम्बद्ध अस्पृश्यता की समस्या को लिया गया है। जूनिया दूम जाति की है बचपन में अनजाने में गोसाई की बावली से पानी पी लेने के कारण उसकी बहुत बूरी तरह से पिटाई हुई थी। जवानी में नरभक्षी बाघ से प्राण बचाने के लिए वह मंदिर में आश्रय लेता है। उसके इस मंदिर प्रवेश को लेकर गाँव में बहुत बडा बावेला मचता है तब भी उसको बुरी तरह पीटा जाता है। छुआ-छूत के इस प्रकार के तिरस्कार और अपमान के कारण वह गाँव छोड़कर शहर चला जाता है और वहाँ ईसाई धर्म को अंगीकृत कर लेता

है । प्रेमचंदजी की प्रस्तुत कहानी में भी इसी तथ्य को आकलित किया गया है । कहानी नायक जोखू को बिमारी में भी बदबू दार पानी पीना पडता है, जिसके कारण उसकी मौत भी हो सकती है ।

(२) पूस की रात : ---

"पूस की रात" कहानी का नायक हल्कू भी दलित जाति का ही है । प्रस्तुत कहानी में भी इस वर्ग की दरिद्रता और ऋण की समस्या को रेखांकित किया गया है । हल्कू एक छोटा सा किसान है । जाड़े में फसल की रक्षा के लिए उसने मेहनत-मजदूरी करके तीन रूपये जमा कर रखे है । इन तीन रूपयों से वह माघ-पूस की रातों के लिए कम्बल लेना चाहता था । पर तभी साहूकार आता है, जो रूपये उसने कम्बल के लिए जोड रखे थे वे रूपये उसे सहना को दे देना पडता है । हल्कू उस समय सहना को पैसा नहीं देना चाहता था मगर वह सोचता है सहना मानेगा नही, घुडकिया जमायेगा, गालियाँ देगा । अतः सिर पर आयी हुई उस बला से तत्काल पीछा छोडने हेतु वह अपनी स्त्री मुन्नी से खुशामत करता है- "ला दे दे, गला तो छुटे । कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा ।"[२३]

मुन्नी आँखे तरेडते हुए अपने आदमी से कहती है- "कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सुनूँ कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल ? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती । मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई । बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है । पेट के लिए मजूरी करो । ऐसी खेती से बाज आये । मैं रूपये न दूँगी - न दूँगी ।" [२४]

मुन्नी भी "गोदान" की धनिया की भाँति तेज-तरार औरत है परंतु है तो आखिर स्त्री ही । रूपये हल्कू के हाथ पर रखते हुए बोलती है- "तुम छोड़ दो अबकी से खेती । मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को मिलेगी । किसी की धौंस तो न रहेगी । अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह

उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।'' [२५]

और आखिर वही होता है पूस की रात में हल्कू अपने खेत की रखवाली के लिए जाता तो है पर पूस के जाडे को बरदाश्त नहीं कर पाता। अतः पास के अरहर के खेत से कुछ पौधे उखाड कर उसका झाड़ू बनाता है और उससे आम की पत्तियों को बटोर कर अलाव की व्यवस्था करता है। जाड़े से थोड़ी राहत मिलती है तो पिछली रात में उसकी आँख लग जाती है तो दूसरी तरफ नील गायें उसके पूरे खेत का सफाया कर देती है। मुन्नी कहती है इधर तुम आकर रम गये और उधर सारा खेत चौपट हो गया भला ऐसे भी कोई सोता है? तुम्हारा मडैया डालने से क्या हुआ? हल्कू बहाना बनाता है -''मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।'' [२६] दोनों खेत की दशा देखते हैं। सारी मेहनत पर पानी फिर जाने से मुन्नी उदास हो जाती है। वह सोचती है अब मजदूरी करके माल गुजारी भरनी पड़ेगी। परंतु हल्कू प्रसन्न है क्योंकि वह सोचता है रात की ठंड मे यहाँ सोना तो न पड़ेगा। [२७]

लेखक ने यहाँ बताया है कि फसल के नष्ट हो जाने पर प्रसन्न होता है। परंतु इस प्रसन्नता में गहरी उदासीनता है। गालीब ने बिलकुल सही कहा है- ''दर्द का हद से गुजर जाना दवा हो जाना'' यहाँ पर हल्कू और मुन्नी की सारी मेहनत मिट्टी में मिल जाती है फसल से होनवाली आमदनी का जरिया ही समाप्त हो जाता है। उपर से मजदूरी करके माल गुजारी की रकम चुकानी पड़ेगी। अतः यह जो चोट उन पर पड़ी है, वह बड़ी गहरी है हल्कू के हास्य में भी एक करूणता छिपी हुई है।

प्रस्तुत कहानी में एक छोटे किसान के मजदूर हो जाने की त्रासदी को अभिव्यंजित किया गया है, वस्तुतः देखा जाय तो गोदान की गोदान भी यही समस्या है। अतः कहा जा सकता है गोदान उपन्यास का ''बीज''हमें प्रस्तुत कहानी में प्राप्त होता है। दूसरे यह तथ्य भी हमारे सामने आता है कि धनी आदमी ही अच्छी कास्तकारी भी कर सकता है। हल्कू के पास यदि पैसे हो तो वो कम्बल खरीद लाता और अपने फसल की रक्षा कर

पाता। फसल की आमदनी से वह साहूकार का कर्ज भी चुका सकता था परंतु साहूकार उसको उतनी मोहलत नहीं देता फलतः उसकी सारी फसल बरबाद हो जाती है। पानी वहीं बरसात है जहाँ पानी होता है, ठीक उसी प्रकार धन भी वहीं एकत्रित होता है जहाँ धन होता है। स्थिति के इस अंतर को लेखक ने हल्कू होता है। स्थिति के इस अंतर को लेखकने हल्कू की आत्मपीड़ा के द्वारा व्यंजित किया है। यथा- "और एक-एक भागवान ऐसे पड़े है, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गदे, लिहाफ कम्मल। मजाल है कि जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी है ! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें !" [२८] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी के माध्यम से हम देख सकते है कि भाग्य का होना गरीब आदमी का अंतिम सहारा है।

(३) घासवाली : ---

ग्रामीण परिवेश में प्रायः देखा गया है कि कुछ जाति के लोग निम्नजाति की स्त्रियों की इज्जत से खेलते है, बल्कि वे उनकी इज्जत को इज्जत ही नहीं समझते। उनके साथ यौन-खिलवाड़ करना वे अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते है। प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंदजी ने ग्रामीण जीवन के इस आयाम के एक दूसरे पहलू को प्रस्तुत किया है। इस कहानी का प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ था। मूलतः यह कहानी "मुंशी जी के ठाकुर का कुआँ" में प्रकाशित हुई थी, किंतु अब उसे "मानसरोवर भाग-१" में संकलित किया गया है। प्रस्तुत कहानी में चित्रित घासवाली मुलिया महावीर चमार की घरवाली है। वह अत्यंत सुंदर है, अतः लोग उसे "ऊसर में गुलाब के फूल" की उपमा देते है। गाँव के मनचले युवक उसकी एक-एक चितवन के लिए तरसते है लेकिन मुलिया हंमेशा नीची आँखे किए अपनी राह चली जाती है।

एक दिन जब वह घास काटने जाती है तब गाँव का युवा ठाकुर चैनसिंह

उसका हाथ पकड़ लेता है। चैनसिंह कई दिनों से मुलिया को देख रहा था और उसे पाने के लिए उचित मौके की तलाश में था उस दिन एकांत पाकर वह मुलिया का हाथ पकड़कर कहता है - "मुलिया,तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नहीं आती।" [२९] इस पर मुलिया का फूल-सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहेक उठता है। वह जरा भी डरती नहीं है, जरा भी झिझकती नहीं है और झौआ जमीन पर फेंकते हुए कहती है- "मुझे छोड़ दो, नहीं में चिल्लाती हूँ।" [३०]

मुलिया के इस रूप को देखकर चैनसिंह के दाँतो पसीना आ जाता है। उसे एक नया अनुभव होता है। वह तो सोचता था कि नीची जातों में रूप-माधुर्य का इसके सिवाय और काम ही क्या है ? कि वह ऊँची जातिवालों का खिलौना बने। ऐसे कितने ही मोर्चे उसने जीते थे, परंतु आज मुलिया के उस सात्विक क्रोध और अभिमान को देखकर उसके छक्के छूट गये। उसने लज्जित होकर उसका हाथ छोड़ दिया। इस प्रसंग का बड़ा ही सटीक वर्णन मुंशीजी ने किया है। यथा- "मुलिया जब कुछ दूर निकल गई तो क्रोध, भय तथा अपनी बेबसी को अनुभव करके उसकर आँखों में आँसू भर आये। उसने कुछ देर जब्त किया, फिर सिसक-सिसकर रोने लगी। अगर वह इतनी न गरीब होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता !" [३१]

एक साधारण-सी चमार युवती जिसे अपनी आजीविका हेतु ऊँची जातिवाले लोगों पर निर्भर रहेना पड़ता है, उसके साहस और आत्मदर्प को देखकर चैनसिंह का हदय परिवर्तन हो जाता है। दूसरी बार जब मुलिया चैन सिंह के खेत से जब घास काट रही थी तब एक बार फिर चैनसिंह से उसका सामना हो जाता है। इस बार मुलिया अपने तर्कों से चैनसिंह को परास्त कर देती है। वह चैनसिंह से कहती है - "अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता ? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं ? बोलो ! क्या समझते हो कि महावीर चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा

नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है ? मेरा रूप-रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरतें और नहीं घूमा करती? मैं तो उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उनमें से क्यों नहीं दया माँगते ! क्या उनके पास दया नहीं है ? मगर वहाँ तुम न जाओगे; क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसीलिए न कि मैं चमारनि हूँ, नीच जाति की हूँ और नीच जाति की औरत जरा-सी घुड़की-धमकी या जरा-से लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे ?'' [३२]

इस प्रकार संवाद के एक ही झटके में मुलिया सामंती जीवन-मूल्यों की धज्जियाँ उड़ा देती है। मुलिया की बात से लज्जित होकर चैनसिंह कहता है- ''मूला, यह बात नहीं। मैं सच कहता हूँ, इसमें ऊँच-नीच की बात नहीं है। सब आदमी बराबर है। मैं तो तरे चरणों पर सिर रखने को तैयार हूँ।'' इस पर मुलिया कहती है -''इसीलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नहीं सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रखो, तो मालुम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है ! फिर यह सिर तुम्हारी गरदन पर न रहेगा।'' [३३]

यहाँ मुलिया ऊँची जाति के लोंगो पर कुछ कर्रारे प्रहार भी करती है। यथा - मैं भी रोज बाजार जाती हूँ। बड़े-बड़े घरों का हाल जानती हूँ। मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो, जिसमें कोई साहस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पण्डा,कोई महाराज न घुसा बैठा हो? वह सब बड़े घरों की लीला है ओर औरतों जो कुठ करती है, ठीक करती हैं ! उसके घरवाले भी तो चमारियों और कहरिनों पर जान देते फिरते हैं। लेना-देना बराबर हो जाता है। बेचारे गरब आदमियों के लिए ये बाते कहाँ? मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ, लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी वह मुझे

इसी तरह रखता। इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नहीं हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दूँ। हाँ वह अपने मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूँग दलूँगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न ? आज मुझे माता निकल आये, कानी हो जाऊँ तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं। बोलो, झूठ कहती हूँ ?''[३४]

प्रस्तुत कहानी के माध्यम से प्रेमचंदजी ने स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या के उत्स को पकड़ने की चेष्टा की है। मुलिया पहले गरीबी की बात करती है, परंतु दूसरी बार-जब वह चैनसिंह से मिलती है तो जाति की बात करती है कि यदि वह चमारिन न होकर खत्रानी होती तो क्या चैनसिंह इस प्रकार का प्रस्ताव रखने की हिंमत कर सकता था ?

''पूस की रात''कहानी में जहाँ एक छोटे किसान के मजदूर हो जाने की वेदना और विडम्बना को उकेरा गया है, वहाँ प्रस्तुत कहानी में लेखक ने यह विश्लेषित किया है कि गरीब आदमी अपना व्यवसाय भी ठीक से नहीं चला सकता। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने मुलिया के पति महावीर की गरीबी का यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है। महावीर मुलिया को चाहता है। उसका बस चलता तो मुलिया को कलेजे में बिठा लेता, आँखो मे छिपा लेता लेकिन घोड़े का पेट भरना भी तो जरूरी था। महावीर ताँगा चलाता है, अतः घोड़े का भी ध्यान रखना पडता है महावीर के पास पैसे होते या कुछ खेत होते तो घोडे के लिए घास का बंदोबस्त हो सकता था परंतु महावीर तो गरीब है इन दोनों वस्तुओं से वंचित है। अतः न चाहते हुए भी मुलिया को दूसरे के खेतो में घास छिलने जाना पडता है। यथा - ''घास मोल लेकर खिलाये, तो बारह आने रोज से कम न पड़े ऐसी मजदूरी ही कौन होती है। मुश्किल से डेढ़-दो रूपये मिलते है, वह भी कभी न मिले।''[३५]

प्रस्तुत कहानी में लेखकने औद्योगिक करण के दुष्परिणामों के और भी पाठको का ध्यान आकर्षित किया है। यह गाज भी गरीबों पर ही

सबसे पहले गिरी है। एक स्थान पर महावीर कहता है- "जब से वे सत्यानाशी लारीयाँ चलने लगी है; इक्के वालों की बधिया बैठ गई है। कोई सेंत में भी नहीं पूछता। महाजन से डेढ़सो रूपये उधार लेकर इक्का और घोडा खरीदा था मगर लारीयों के आगे इक्के को कौन पूछता है। महाजन का सूद भी न पहुँच सकता था, मूल का तो कहना ही क्या!" [३६]

प्रस्तुत कहानी में हमें मुंशी प्रेमचंद की कलात्मक निरपेक्ष दृष्टि का परिचय मिलता है। जमींदार चैनसिंह का चरित्र-चित्रण उन्होंने किसी पूर्वाग्रह के तहत नहीं किया है। मुंशीजी ने यहाँ स्पष्टतः घोतित किया है कि ऊँचेवर्ग के सभी लोग जुल्की या शैतान नहीं होते। मुलिया से लताड़ खाने के बाद चैनसिंह का आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है। गरीबों और दलितों के प्रति उसका दृष्टिकोण ही बदल जाता है वह अत्यंत दयालु उदार और गंभीर हो जाता है।

दूसरी तरफ लेखक ने यह भी इंगित किया है कि गरीबी ओर लाचार दर्जी मनुष्य से क्या नहीं करवाती? जो मुलिया चैनसिंह द्वारा हाथ पकड़ने पर बाघिन की तरह बिफर उठी थी वही मुलिया जब शहर घास बैचने जाती है तो उसे उन लोगों से हँस-हँस के बोलना पड़ता है जो उसे रूप और जवानी को वासनात्मक निगाहों से देखते थे और उसके साथ गंदी और भोंडी मजाक करते थे। चैनसिंह से यह नहीं देखा जाता, अतः वह महावीर का रोजगारी का एक अच्छा और व्यवस्थित सिलसिला निकाल देता है। अतः मुलिया घास बेचने की फजीहत से निजात पा जाती है। मुलिया भी चैनसिंह के इस उपकार से गद्‌गद् हो जाती है। एक बार खेतों में चैनसिंह के अचानक सामने पड़ने पर मुलिया मुस्कराकर उसे कहती है- "यहाँ तुमने मेरी बाँह पकडी थी।" इस पर चैनसिंह लज्जित होकर कहता है - "उसको भूल जाओ मूला। मुझ पर न जाने कौन भूत सवार था।" तब मुलिया उसी बाँह गहे की लाज तो निभा रहे हो। गरीबी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे बचा लिया।" [३७]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी दलितजीवन के यथार्थ आयामो को हमारे

सम्मुख उद्घाटित करती है ।

(४) गुल्ली डंडा : ---

"गुल्ली डंडा" कहानी में गया नामक एक चमार की बात आती है । प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंदजी ने बड़ी कुशलता से यह चित्रित किया है कि ग्रामीण परिवेश में जहाँ गाँव भर के बच्चे गुल्ली-डंडा इत्यादि का खेल खेलते है वहाँ उनमें ऊँच-नीच, जाति बिरादरी या स्पृश्य-अस्पृश्य का कोई लिहाज नहीं होता है । इस कहानी का नायक "मे"एक उच्च संभ्रात जाति का व्यक्ति है, परंतु बचपन में वह जब गया के साथ खेलता था तो उसे यह भी नहीं मालुम था कि वह किस जाति का है । उसके ही शब्दों में--"मेरे हमजोलियों में एक लड़का "गया" नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लम्बा, बन्दरों की-सी लम्बी-लम्बी पतली-पतली ऊँगलियाँ, बन्दरों की-सी चपलता, वही झल्लाहट । गुल्ली कैसी ही हो, उस पर इस तरह लपकता था ; जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है । मालूम नहीं उसके माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था; पर था हमारे गुल्ली-कल्ब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ जाय, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर से आते देख,उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।"[३८]

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंदजी ने यह चित्रित किया है कि कहानी नायक "मैं" बचपन में अपने ग्रामीण साथियों के साथ गुल्ली डंडा का खेल खेलता था। बाद में उसके पिताजी का तबादला शहर में हो जाता है और वह शहर चला जाता है । बचपन के उसके साथियों में गया नामक एक चमार का लड़का था जो गुल्ली डंडा के खेल का चैम्पियन था। बीस साल बाद कहानी नायक इंजीनियर होकर उसी कसबे में आता है और अपने पुराने साथी गया की खोज खबर लेता है ।

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंदजी ने यह बताया है कि पहले ग्रामिण परिवेश में जातिवाद का जहर नहीं था। जातियाँ होती थी। ऊँच-नीच भी होता था। परंतु यह सब एक सामाजिक व्यवस्था के तहत था। दूसरे शब्दों में कहें तो जातिवाद बाह्यतः था, आंतिरक उतना नहीं था,और बच्चों में तो जातिवाद की यह भावना ही नहीं होती थी। कहानी नायक "मैं" का पिता थानेदार है, उच्च जाति का है परंतु उसका कोई असर बच्चों के इस खेल पर नहीं है। गया थानेदार के लड़के को खूब पदाता है। इस बात को लेकर जब वह धांधली करता है तो उनमें लड़ाई-झगड़ा, मारपीट गाली-गलौज तक होता है। आज की स्थिति होती तो चमार का कोई लड़का थानेदार के लड़के से उलझने की हिम्मत न करता। एक दिन पहले थानेदार के लड़के ने गया को अमरूद खाने के लिए दिया था। वह उसकी भी धौंस जमाता है पर गया है कि मानता ही नहीं। वह कहता है अमरूद-सम-रूद मैं नहीं जानता। मेरा दाव देकर जाओ। इसका बड़ा सटीक वर्णन प्रेमचंदजी ने किया है। यथा-"मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डँटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता था! मैने गाली दी? उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली नहीं, दो-एकं चाँटा जमा दिया, मैंने उसे दांत काट लिया तो उसने मेरी पीठ पर डण्डा जमा दिया और मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका, भागा। मैंने तुरंत आँसू पोछ डाले , डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर जा पहुँचा! मैं थानेदार का लड़का एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ; लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।" [३९]

बीस साल बाद जब कहानी नायक "मैं" उसी गाँव में इंजीनियर बनकर आता है तो स्थितियों में काफी बदलाव आ गया था। गया अब पहले का गया नहीं था जो थानेदार के लड़के को भी कह दे कि हाँ तुम पर मेरा दाँव है अतः तुम मेरे गुलाम हो। वह अब कहानी नायक को "सरकार,सरकार" कहकर बात करता है। कहानी नायक उसके साथ दूर एकांत में गुल्ली डंडे

खेलता है तब उसकी बेईमानी और गलत सलत बातों को भी चला लेता है। एक बार गुल्ली डंडे से लगी थी और उसकी साफ और स्पष्ट "टन" जैसी आवाज भी हुई थी तब भी जब कहानी नायक इंजीनियर साहब पूछते है कि कहीं गुल्ली ईंट से तो नहीं लगी थी। तब वह उनकी बात को स्वीकार कर लेता है- "हाँ, किसी ईंट में ही लगी होगी। डंडे मे लगती तो इतनी आवाज न आती।" [४०]

यहाँ तक की बाद में जब उसका पदाने का दाँव आता है तब भी वह दो-पाँच मिनिट में ही खेल खत्म कर देता है। दूसरे दिन गाँव के पुराने गुल्ली डंडा खेलनेवालों का मैच है, तभी इंजीनियर साहब को पता चलता है कि गया केवल उसे खिला रहा था। उनके ही शब्दों में- "अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया था। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धाँधली की, बेईमानियाँ की, पर उसे जरा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खिला रहा था, मेरा मान रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। अब मैं उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।" [४१]

(५) दूध का दाम : ---

"दूध का दाम" प्रेमचंदजी की एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं यथार्थवादी कहानी है। इसका प्रकाशन सन् १९३४ में हुआ था। यहाँ तक आते-आते प्रेमचंदजी गांधीवादी भूल-भुलैया से पूर्णरूपेण बाहर निकल आये है और खुल्लमखुल्ले सवर्णों के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ

अछूतों के पक्षधर के रूप में समाने आ रहे है। प्रेमचंदजी अब स्पष्ट रूप से कह रहे थे कि अस्पृश्यता के भूत से छुटकारा पाये बिना राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का कोई अर्थ नहीं है। इन्हीं दिनों में उन्होंने ''जागरण'' में पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र ''निर्मल''को भी आड़े हाथों ले तो हुए इस संदर्भ में अपना स्पष्ट मंतव्य प्रकट किया था-''अंत में मैं अपने मित्र निर्मल जी से बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करूँगा कि पुरोहितों के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोड़े रह गये है और समाज और राष्ट्र की भलाई इसी में है कि जाति से भेद-भाव, यह एकांगी प्रभुत्व, यह खून चूसने की प्रवृत्ति मिटायी जाय, क्योंकि जैसा हम पहले कह चुके है, राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण-व्वयस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है। इस तरह के लेखों से आपको आपके पुरोहित भाई चाहे अपना हीरो समझे और मंदिर के महंतो और पुजारियों की आप पर कृपा हो जाय, लेकिन राष्ट्रीयता को हानि पहुँचती है और आप राष्ट्रप्रेमियों की दृष्टि में गिर जाते है।'' [४२]

कहना न होगा कि इन्हीं दिनों में निर्मलजी प्रेमचंदजी के विरूद्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिख रहे थे और प्रेमचंदजी को ब्राह्मण-विरोधी घोषित करते हुए उनके लेखन पर तमाम प्रकार की अपत्तियाँ उठाई जा रही थी। यह वही प्रेमचंद जी हैं जो कुछ साल पहले वर्ण-व्यवस्था और वैदिक-संस्कृति का गुणगान मुक्त-कंठ से कह रहे थे। वस्तुतः देखा जाय तो प्रेमचंद जी में विचारधारा की दृष्टि से एक क्रमिक विकास दृष्टिगत होता है। वे शनेःशने आर्यसमाजी विचारधारा से गांधीवाद और गांधीवाद से मार्क्सवाद की ओर संक्रमित होते गए है।

''दूध का दाम'' कहानी का सार संक्षेप इस प्रकार है। बाबू महेशनाथ गाँव के जमींदार है। तीन पुत्रियों पर पुत्र रत्न प्राप्त हुआ है। जच्चगी गाँव के मंगी गुदड़ की बहू मूँगी ही करवाती है। पर अबकी बार मालकिन के दूध नहीं उतरता है। अतः मूँगी दाई भी थी और दूध-पिलाई भी। अपना दूध वह मालकिन के लड़के सुरेश को पिला देता है, उसका खुदका

लड़का मंगल भूखा रह जाता है। उपर का दूध हजम न कर पाने के कारण उल्टी कर देता है और फलतः दिन-ब-दिन दुबला होता जाता है। एक साल के बाद मूँगी विधवा हो जाती है। उसका पति प्लेग की चपेट में आ जाता है। छोटी जातियों में तो विधवा-विवाह होते है, पर मूँगी दूसरा विवाह नहीं करती। इसी तरह पाँच साल बीत जाते है। मूँगी महेशनाथ के यहाँ काम करते हुए किसी तरह अपने बेटे को पाल रही है। पर एक दिन जमींदार साहब की हवेली का ही परनाला साफ करते हुए एक गेडुंवन साँप उसे डँस लेता है और मूँगी इसी सर्पदंश से मर जाती है। मंगल अनाथ हो जाता है। उसे अपने जैसा ही एक समदुखिया मिल जाता है - एक कुता जिसका नाम टामी है। टामी भी अपने सदवर्गियों में उपेक्षित है और उनके जुल्मों दुःखी होकर मंगल की शरण में पड़ा है। मंगल और टामी दोनों का गुजारा जमींदार साहब के यहाँ की जूठन से हो जाता है। दोनों ही उपेक्षित और अपमानित प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे है। एक दिन सुरेश मंगल को घोड़े के खेल के लिए अपने साथियों में जबरदस्ती शामिल करता है। मंगल से सुरेश का बोझ बरदाश्त नहीं होता था, अतः वह धीरे से अपनी पीठ सिकोड़ता है और सुरेश की रान के नीचे से सरक जाता है। फलतः सुरेश गिर जाता है। वह अपनी मां से झूठी शिकायत करता है कि उसको मंगल ने छू लिया। मालकिन मंगल को बुरी तरह से फटकारती है और अपने यहाँ से निकाल देती है। दिनभर मंगल और टामी इधर-उधर भूखों घूमते रहते है, पर रात होने पर भूख बर्दाश्त नहीं होती और वे दोनों जमींदार साहब के यहाँ पहुँचते है। कहार जूठन फेंकने ही जा रहा था कि उसकी नजर मंगल पर पड़ती है और वह उन जूठी पत्तलों को उनके हवाले कर देता है और वे दोनों वहीं नीम के नीचे उसी पत्तल में से खाने लगते है कहानी के अंत भाग में मंगल टामी से कहता है- "देखा, पेट की आग कैसी होती यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलती, तो क्या करते ?" [४३]

किन्तु कहानी के अंत में लेखक ने एक वाक्य मंगल के मुंह से

कहलवाया है जो इस समूची कहानी के मर्म को उद्घाटित करता है - "लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।"[४४]

इस प्रकार हम देख सकते है कि "दूध का दाम" कहानी दलित-जीवन की विभीषिकाओं को उकेरनेवाली कहानी है। इसमें लेखक ने अपनी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से उच्चवर्णीय लोगों की शोषण नीति का पर्दाफाश किया है। हमारा धर्म किस तरह खान-पान और चौके-चूल्के तक महदूब है, इसे भी रेखांकित किया गया है। इसे किस प्रकार अपनी सुविधा के अनुसार तोड़ा-मरोड़ा जाता है। उसे मोटेराम शास्त्री के कथनों में देखा जा सकता है। महेशनाथ के बच्चे ने भंगिन का दूध पिया था, अतः उन्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा। इस पर महेशनाथ कहते है- "प्रायश्चित की खूब कही शास्त्रीजी, कल तक उसी भंगिन का खून पीकर पला, अब उसमें छूत घुस गयी। वाह रे आपका धर्म।"[४५]

महेशनाथ की इस बात से शास्त्रीजी आगबबूला हो जाते है और शिर फटकारते हुए बोलते हैं- "यह सत्य है, वह कल तक भंगिन का रक्त पीकर पला। मांस खाकर पला, यह भी सत्य है, लेकिन कल की बात कल थी, आज की बात आज। जगन्नाथ पुरी में छूत-अछूत सब एक पंगत में खाते हैं, पर यहाँ तो नहीं खा सकते। बीमारी में तो हम भी कपड़े पहने खा लेते है, खिचड़ी तक खा लेते है बाबूजी; लेकिन अच्छे हो जाने पर तो नेम का पालन करना ही पड़ता है। आपद् धर्म की बात न्यारी है।"

तो हमका यह अर्थ है कि धर्म बदलता रहता है- कभी कुछ, कभी कुछ?

और क्या! राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, गरीब का धर्म अलग, राजे-महाराजे जो चाहे खायें, जिसके साथ चाहें खायें, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बंधन नहीं। समर्थ पुरूष है। बंधन तो मध्यवालों के लिए है।[४६]

कहानी में छूत-अछूत समस्या को कई स्थानों पर रेखांकित किया जा

सकता है । सुरेश तथा गाँव के अन्य बच्चे मंगल को खेलने के लिए कहते है । यहाँ भी अपनी सुविधा का ही खयाल है । खेलनेवालों की जोड़ी पूरी न पड़ रही थी । जोड़ी पूरी होती तो शायद वे मंगल को न कहते । तब छूत का धर्म बीच में आता । यथा- ''जो कुछ भी हो, तजवीज की कि आज मंगल को भी खेल में शरीक कर लिया जाय । यहाँ कौन देखने आता है । क्यों रे मंगल खेलेगा ?''

''मंगल बोला- ना भैयां, कहीं मालिक देख लें, तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाय ! तुम्हें क्या, तुम तो अलग हो जाओगे ।'' ४७

वे लोग जबरदस्ती मंगल को घोड़ा बनाते है तब मंगल सुरेश को अपनी पीठ से गिरा देता है । इस पर सुरेश अपनी मां से शिकायत करता है कि मंगल ने उसको छू लिया । इसे सुनकर मालकिन भी मंगल पर ही बरस पड़ती है । यहाँ पर भी लेखक अस्पृश्यता के झूठे ख्यालों पर चिकोरी लेना नहीं चूकते-

''देवीजी दांत पीसकर रह गयीं । मारतीं, तो उसी दम स्नान करना पड़ता । छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह में पैवस्त हो जाता इसलिए जहाँ। तक गालियाँ दे सकीं, दीं और हुक्म दिया कि अभी अभी यहाँ से निकल जा । फिर, जो इस द्वार पर तेरी सूरत नजर आयी, तो खून पी जाऊँगी । मुफ्त की रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती है ।'' ४८

मंगल की मां मूँगी का दूध उसके बेटे के लिए चल सकता है । तब छूत नहीं लगती और अब मंगल को छूने में छूत लग जाती है । किन्तु यहाँ हम जमीनदारिन का दोष नहीं निकाल सकते, क्योंकि वह तो उसी लीक पर चल रही है जो मोटेराम शास्त्री जैसे लोगों ने निर्धारित की है । हमारे समाज में स्त्री का कोई स्वतंत्र वजूद ही नहीं है । कहानी के केन्द्र में दलित-चेतना है, किन्तु प्रेमचंद बराबर यह बताते जा रहे है कि स्त्री की स्थिति भी दलित जैसी ही है । मूंगी को सुरेश के जन्म पर खूब दान-दक्षिणा मिलती है । सोने के चूडे भी मिलते है । ''एक की जगह दो नयी

सुंदर साड़ियाँ-मामूली नैनसुख की नहीं, जैसी लड़कियों की बार मिली थी।''[४९] माता-पिता की मृत्यु के बाद मंगल अनाथ हो जाता है, तब उसका संगी साथी टामी नामक एक कुता हो जाता है। यहाँ लेखक कदाचित यहीं संकेतित करना चाहता है कि एक दलित अनाथ बच्चे की स्थिति किसी कुत्ते से बेहतर नहीं होती। दूसरे वह कुत्ता टामी भी सशक्त या खूंखार नहीं है। वह भी मंगल की तरह मरियल और अपनी बिरादरीवालों से सताया हुआ है। दोनों समदुखिये है। लेखक ने उसका बड़ा ही संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है -

''मंगल ने कहा- तो तुम जाओ, जो कुछ मिल खा लो, मेरी परवाह न करो।''

''टामी ने अपनी श्वान-भाषा में कहा-अकेला नहीं जाता, तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।''

''मैं नहीं जाता।''

''तो मैं भी नहीं जाता।''

''भूखों मर जाओगे।''

''तो क्या तुम जीते रहोगे ?''

''मेरा कौन बैठा है, जो रोयेंगा ?''

''यहाँ भी वही हाल है भाई, क्वांर में जिस कुत्तिया से प्रेम किया था, उसने बेवफाई की और अब कल्लू के साथ है।''[५०]

इस कहानी में कई ऐसे बिन्दु है जो हमें संवेदना के स्तर पर गहराई से छू लेते है। कहानी के अंत भाग का यह वाक्य- ''देखा, पेट की आग ऐसी होती है।''[५१] जहाँ वास्तविकता को निरूपित करता है; वहाँ यह वाक्य - ''और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।''[५२] मंगल की विद्रोही दलित-चेतना को प्रतिबिंबित कर रहा है।

(६) शूद्रा : ---

"शूद्रा" कहानी में प्रेमचंदजी ने निम्न जातियों में भी जो ऊँच-नीच का (जातिगत संस्करण)(Hierarchy) है और उसके कारण जो समस्या पैदा होती है उसका बड़े ढंग से रेखांकन किया है। इसमें लेखक ने एक विधवा माँ और उसकी बेटी कर कहानी को लिया है। माँ का नाम गंगा था बेटी का गौरा। वे दोनों गाँव मे दूसरे सिरे पर एक झोंपड़ी बनाकर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियाँ बटोर लाती थी, माँ भाड झोंकने का काम करती थी। इसी से शेर-दो शेर अनाज उसको मिल जाता था, जिसमें उसकी गुजर-बसर हो जाती थी। माता विधवा थी, बेटी कुँवारी और घर में कोई आदमी नहीं था। पति के मर जाने के बाद गंगा ने दूसरा विवाह नहीं किया था। भाड झोंकने के अलावा कोई दूसरा धंधा भी नहीं करती थी, इससे गाँव के लोग इन दोनों माँ-बेटी को संदेह की दृष्टि से देखते थे। यथा- "इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर उनको गुजर कैसे होता है। और लोग तो छाती फाड़-फाड़ कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंधा नहीं करती, फिर भी माँ-बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलाती इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है। धीरे-धीरे यह संदेह और भी दृढ हो गया। बिरादरी में कोई भी गौरा से सगाई करने पर राजी न होता था।"[५३]

लेखक ने इनकी जाति विशेष के संदर्भ में कोई विशेष जिक्र नहीं किया है केवल एक स्थान पर एक दो वाक्यों में संकेत-भर दिया है- "शूद्रों को बिरादरी बहुत छोटी होती है। दस-पाँच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता।" [५४] किन्तु शूद्रों की कौन-सी जाति है, उसकी कोई स्पष्टता नहीं है दूसरे कहानी में एक परदेशी का जिक्र आता है जो नौकरी की तलाश में कलकता जा रहा था। रात हो गई थी, अतः किसी कहार का घर पूछते-पूछते वह गंगा के घर आता है। गंगा उसका खूब आदर सत्कार करती है, उसके लिए गेहू का आटा मँगवाती है घर से बर्तन

निकाल के देती है कहार खाना पकाता है और वहीं रात रह जाता है। यहाँ पर कहार स्वयं खाना बनाता है इससे इतना तो स्पष्ट होता है कि गंगा और गौरा उसकी जाति के नहीं है बल्कि उनकी तुलना में वह ऊँची जाति का है। यदि वह उनकी बराबरी वाला होता तो गंगा उसके लिए खाना पकाती। पर वह खुद खाना पकाता है।

उस कहार का नाम मँगरू था वह उस रात वहाँ रह जाता है रात को बातें होती है। गंगा और गौरा के संदर्भ में उससे पूछती है मँगरू को भी गौरा अच्छी लगती है अतः दोनों की सगाई हो जाती है। कहानी में सगाई का ही जिक्र है विवाह की कोई बात नहीं आई है। परंतु सगाई के बाद मँगरू उनके यहाँ ही रहता है। सगाई के लिए मँगरू गहने अपनी बहन के यहाँ से लाया था। एक महीने के बाद अपनी बहन के यहाँ गहने लौटाने जाता है खाना खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन के लिए नहीं बैठता है। मँगरू को कुछ संदेह होता है। वह अपने बहनोई से पूछता है तुम क्यों नहीं खाते ? बहनोई कहता है- "तुम खा लो मैं फिर खा लूँगा। तब मँगरू कहता है - बात क्या है तुम खाने क्यों नहीं बैठते ? उसके उत्तर में उसका बहनोई जो जवाब देता है उससे मँगरू चौंक जाता है उसके आघात लगता है। वह मीजई पहनता है और ससुराल चल देता है। बहन अपने भाई को रोक भी नहीं पाती वह वहाँ खड़ी-खड़ी रोती रहती है मँगरू की बहन ने कहा था- "जब तक पंचायत न होगी मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूँ ? तुम्हारे लिए बिरादरी न छोड दूँगा। किसी से पूछा न ताछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।"[५५]

बहनोई ने उसके साथ खाना गवारा नहीं समझा इस घटना के बाद मँगरू किसी को कुछ कहे सुने बिना गाँव छोड़कर कहीं चला गया। गाँव की स्त्रियाँ गौरा को पूछती- "मंगरू तुम्हें छोड़कर क्यों चले गये?" इसके उत्तर में गौरा कहती- "क्या करते ? मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है। देश-परदेश में निकलकर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है। नहीं तो मान-मरजाद का निर्वाह कैसे हो?"[५६] लोगों को तो इस

प्रकार की बातों के लिए टालती रहती, परंतु उसका दिया सदा इस बात के लिए कलपता रहता था कि स्वामी उसे छोड़कर क्यों चले गये। उसका ऐसा कौन-सा अपराध था, जिसकी ऐसी सजा वे दे रहे है। एक दिन एक सहेली कहेती है- "हम न मानेंगे, तुम्हारा जरूर मँगरू से झगड़ा हो गया है, नहीं तो बिना कुछ कहे सुने क्यों चले जाते ?" इसके जवाब में गौरा हँसकर कहती है-"बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है? वह तो मेरे मालिक है, भला मैं उनसे झगड़ा करूँगी ? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरूँगी वे मुझसे कहकर जाने पाते ? मैं उनके पैरो से लिपट न जाती।"५७

ऐसे पति की स्मृतियों में गौरा किसी तरह दिन व्यतीत कर रही थी कि एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण गंगा के यहाँ आया। उसने बताया कि वह कलकता में मंगरू के पड़ोस में रहता है और मंगरू उसे गौरा को लिया लाने के लिए भेजा है। गंगा को बूढ़े ब्राह्मण की बात में विश्वास बैठता है और वह गौरा को उसके साथ भेज देती है। कलकता पहुँचने पर बूढ़ा गौरा को एक बंद मकान में रखता है। शाम को दरवाजा खुलता है तब गौरा समझती है कि उसके पति आ गये। परंतु उसे बड़ी निराशा होती है। बूढ़ा आकर गौरा से बताता है कि मंगरू की तो बदली हो गयी है। मंगरू ने साहब की खूब मिन्नत समाज की , पर साहब ने एक न सुनी और मंगरू को जाना पड़ा। मंगरू ने मुझे कहा है कि यह संदेश मेरी पत्नी को कह देना और उसे मेरे पास भेज देना। गौरा के पूछने पर वह बताता है कि वह एक दूर का स्थान है जहाज से जाना पड़ेगा। आठ-दस दिन लगेंगें। जहाज में अपने देश के दूसरे लोग भी होंगे।

दूसरे दिन वह बूढ़ा ब्राह्मण गौरा को जहाज में बिठा देता है। वहाँ एक विधवा ब्राह्मणी से गौरी की मुलाकात होती है और तभी उसे पता चलता है कि उसके साथ धोखा हुआ है। ये लोग उनके मिरिच टापू ले जा रहे थे। वहाँ पता नहीं उसके साथ कैसा बर्ताव हो। समदुखिया होने के कारण गौरा तथा विधवा ब्राह्मणी में बदनाम हो जाता है। गौरा उसके

साथ-साथ रहती है । वे दोनों आगामी संकट के लिए अपना मन बना लेती है । विधवा ब्राह्मणी कहती है-"अगर मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण लूंगी या आपने प्राण दे दूंगी।"[५८]

किंतु जहाज से उतरते ही गौरा के आनंद और आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता तब वह देखती है कि जहाज से उतरनेवाले यात्रियों का नाम लिखनेवाला व्यक्ति अंग्रेज के लिबास में उसका मंगरू ही था। मंगरू भी गौरा को पहचान लेता है । गौरा विधवा ब्राह्मणी से बताती है कि नाम लिखनेवाला साहब उसका पति मंगरू है । तब उसे भी थोड़ी शान्ती होती है । अब तक गौरा को उसका सहारा था अब गौरा उसके लिए सबकुछ हो गयी। वहाँ जो दूसरे लोग थे, उनसे कुछ कह-सुनकर मंगरू छिपते-छिपाते उन दोनों को अपने यहाँ ले आता है । परंतु नबी नामक एक व्यक्ति अंग्रेज हजण्ट को चुगल कर देता है। अंग्रेज एक जिद पकड़ लेता है कि दो में से एक औरत को उसके बंगले पर भेजना ही होगा। बंगले पर भेजने का क्या मतलब होता है, यह मंगरू अच्छी तरह से जानता है । उसने खुद ने भी कई-मजदूर-लाचार धर्म-संकट के साथ बदफेली की थी, पर अब वह धर्म-संकट में पड़ जाता है । न वह अपनी पत्नी को भेज सकता है और न उस विधवा ब्राह्मणी को, क्योंकि वह गौरा के साथ थी और मंगरू गौरा की नजरों में गिरना नहीं चाहता था। अतः मंगरू उनमें से किसी को भी एजण्ट के पास नहीं भेजता। मंगरू को बुलवाया जाता है । साहब चाबूक लेकर उस पर टूट पड़ता है पर मंगरू टस से मस नहीं होता। लेखक मंगरू के चरित्र को इस प्रकार रेखांकित करते है-

"यह पाषाण-हृदय लंपट, विवेकशून्य जमादार इस एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार था, केवल इस नाते कि यह उसकी पत्नी की संगिनी थी। वह समस्त संसार की नज़रों में गिरना गवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखंड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उसके लिए

असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का क्या मूल्य था ?''[५९]

मंगरू गोरे एजेण्ट के सामने खूब गिड़गिड़ता है परंतु वो टस से मस नहीं होता। गौरा भी साहब के पैरों पर गिर पड़ती है और कहती है कि हुजूर इन्हें छोड़ दें। तब एजेण्ट कहता है कि ''तुम हमारे पास रहेगा। अपने पति की जान बचाने के लिए गौरा खून का घूंट पीकर कहती है- हाँ रहूँगी।'' [६०]

गौरा गोरे साहब के यहाँ तो चली जाती है, परंतु बातों बातों में जान लेती है कि यह निर्दय और लंपट एजेण्ट अपनी माँ को जी-जान से चाहता था। गौरा उसे कहती है कि तुम्हारे ऐसे करतूतों से तुम्हारी माँ को स्वर्ग में भी सुख नहीं मिलेगा। गौरा की बातों से वह सख्त-दिल गोरा अचानक स्निग्ध और कोमल हो उठता है। वह गौरा को छोड़ देता है और मंगरू को अस्पताल पहुँचाता है। चौथे दिन जब मंगरू की आँखे खुलती है तब गौरा सामने बैठी हुई हैं। वह मंगरू से पूछती है- ''अब कैसा जी है ?।'' मंगरू ने पूछा- ''तुम यहाँ कब आई ?'' जवाब में गौरा कहती है-''मैं तो तुम्हारे साथ ही यहाँ आई थी तब से यही हूँ।'' इस पर मंगरू कड़वाहट और व्यंग्यभरे शब्दों में कहता है - ''साहब के बंगले में क्या जगह नहीं है ?''[६१] मंगरू के शंकाशील व्यवहार से गौरा मंगरू के पास बेदाना-पानी खड़ी रही। गौरा ने उसे कई बार बुलाया लेकिन वह चुप्पी साधे रह गया। यह संदेह-युक्त निरादर, कोमल-हृदय गौरा के लिए असहय था। जिस पुरूष को वह देव-तुल्य समझती थी, उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी? यही प्रेम उसके जीवन का आधार था उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।[६२]

फलतः गौरा आत्महत्या करने के लिए पास की एक छोटी-सी नदी में कूद पड़ती है। आँख खुलने पर मंगरू भी उसके पीछे पीछे जाता है। और गौरा को रोकने की चेष्टा करता है परंतु गौरा नदी में छलांग लगा देती है। मंगरू भी नदी में कूद पड़ता है वह अच्छा तैराक था मगर कई

बार गोते मारने पर भी गौरा का कहीं पता न चला। ''प्रातः काल दोनों लाशें साथ-साथ नदी में तैर रही थी। जीवन-यात्रा में तो उन्हें वह चीर-संग भी न मिला था। स्वर्गयात्रा में दोनों साथ-साथ जा रहे थे !!'' [६३]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में एक बार फिर स्त्री के सामने अग्नि-परीक्षावाली स्थिति आती है। किन्तु फर्क यह है कि यहाँ अंततः राम भी अपनी आहुति देता है। मंगरू चाहता तो अपने प्राण बचा सकता था परंतु गौरा के न मिलने पर वह भी डूबकर मर जाता है। तैरनेवाले के लिए डूबना कितना कठिन होता है, वह तो कोई तैराक ही बता सकता है।

(७) बाबाजी का भोग : ---

''बाबाजी का भोग'' छोटी-सी कहानी है, किन्तु बड़ी ही सार्थक सटीक और व्यंग्य कहानी है। गरीबों और दलितों का शोषण जमींदार, महाजन और सरकार के अमले ही नहीं करते; बल्कि धर्म के धुरंधरों द्वारा भी उनका शोषण होता है, प्रस्तुत कहानी इस तथ्य को सशक्त ढंग से उकेरती है। रामधन अहीर एक गरीब छोटा-सा किसान है। ''पूस की रात'' का हल्कू और ''गोदान''के होरी जैसी ही उसकी स्थिति है। खेती की सारी उपज तो खलिहान से ही उठ जाती है। उसका यथार्थ वर्णन करते हुए लेखक बताते हैं- ''उपज सारी-की-सारी खलिहान से उठ गई। आधी महाजन ने ले ली, आधी जमींदारों के प्यादों ने वसूल कर ली,भूसा बेचा तो बैल के व्यापारी से गला छूटा, बस थोड़ी-सी गांठ अपने हिस्से में आई। उसी को पीट-पीटकर मन-भर दाना निकाला था। किसी तरह चैत का महीना पार हुआ। अब आगे क्या होगा। क्या बैल खायेंगें क्या घर के प्राणी खायेंगें, यह ईश्वर ही जाने !'' [६४]

घर की यह हालत है, ऊपर से साधु बाबा आ धमकते हैं। घर में कुछ भी नहीं है अंततः देखताओं के लिए जो अँगौवा निकाला था,वही आधा सेर आटा साधु की झोली में डाल देते हैं। यहाँ रामधन के द्वारा लेखक

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

ने एक अच्छी टिप्पणी करवायी है। यथा-

''स्त्री-देवताओं की पूजा कहाँ से होगी ?

रामधन-देवता माँगने तो नहीं आते ? समाई होगी करना, न समाई हो न करना..... यह बला तो टलेगी, फिर देखी जायेगी।''[६५]

यहाँ पर रामधन की बातों से ज्ञात होता है कि उसके मनमें ऐसे साधु बाबाओं के प्रति सचमुच में कोई आस्था नहीं है। परंतु वस्तुतः उसका धर्मभीरू मन बाबा से डरता है। रामधन और उसकी स्त्री दोनों ही सोचते हैं कि कहीं बाबा कोई बुरा शाप न दे दे। यह धार्मिक आतंक नहीं तो क्या है ?

महात्माजी को आटा मिल जाता है पर वे रामघन का पीछा नहीं छोड़ते। कहते है ''बच्चा अब तो साधु यहीं रमेंगे। कुछ थोड़ी-सी दाल दे, तो साधु का भोग लग जाय।'' संयोग से दाल घर में थी। रामघन ने नमक, उपले आदि जुटा दिए। कुँए से पानी खींच लाया। साधु ने बड़ी विधि से बाटियाँ बनायीं, दाल पकायी और झोली में से आलू निकालकर उसका भुर्ता बनाया। जब सबकुछ तैयार हो गया तो महात्माजी फिर रामघन से बोले-''बच्चा, भगवान के भोग के लिए कौड़ी-भर धी चाहिए। रसोई पवित्र न होगी तो भोग कैसे लगेगा ?''[६६]

घी तो घरमें था नहीं। रामघन महाराज से साफसाफ कह देता है, पर साधु मानने को तैयार नहीं है। वह कहता है- ''बच्चा, भगवान के भंडार में सबकुछ है, जाकर मालकिन से कहो तो ?''[६७] रामघन जब स्त्री से जाकर कहता है तो वह कहती है कि थोड़ी-सी दाल बनिए को देकर,उसके यहाँ से घी ले आओ। जब सब किया है तो इतने के लिए अब क्यों नाराज करना ? घी आ जाता है। बाबाजी ठाकुरजी की पिंडी निकालते हैं, घंटी बजाते है और भोग लगाते हैं। उसके बाद खूब छककर खाते है, और पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट जाते हैं। उस रात रामघन के यहाँ चूल्हा नहीं जलता है। खाली दाल पकाकर ही दोनों पी लेते हैं। रामघन लेटे-लेटे सोचता है- ''मुझसे तो ये ही अच्छे !''[६८]

इस प्रकार यह छोटी-सी कहानी में लेखक ने कई बातों को पिरो लिया है। छोटे किसानों की आर्थिक बदहाली का यथार्थ चित्रण यहाँ हुआ है। खून पसीना एक करने पर भी उनकी गाढ़ी खेती की कमाई दूसरों पर स्वाहा हो जाती है और उनको पेट काटकर महेनत-मजदूरी पर गुजारा करना पड़ता है। किसानों का शोषण सभी करते हैं। उसके पीछे भी उनकी गरीबी है, क्योंकि गरीब आदमी डरपोक हो जाता है। वह सबसे डरता और दबता है। प्रस्तुत कहानी में यदि रामघन साधु बाबा को कुछ न देता तो क्या होता? उसके पास कुछ होता और देता तो ठीक, परंतु कुछ भी न होन पर यह सब करना अंधविश्वास ही नहीं धर्मभीरूता भी है। भयंकर गरीबी के कारण रामघन और उसकी स्त्री के मन में, कहीं गहरे यह भी हो सकता है कि शायद बाबाजी हमें कोई आर्शीवाद दे दें। कहानी का शीर्षक- ''बाबाजी का भोग'' है, जिससे ध्वनित होता है कि बाबाजी भगवान के नाम पर खुद का ही भोग लगता हैं। जो व्यक्ति गरीब मनुष्य की मजबूरी को नहीं समझता, उसको भूखा रखकर खुद ठांस-ठांसकर अपना पेट भर लेता है, उससे पूछता तक नहीं है, फिर उसके ही दरवाजे पर मुस्टंडे की तरह सो जात है, क्या उसे साधु कहा जा सकता है? यह भी एक प्रश्न मन में उठता है। इस प्रकार धर्म द्वारा गरीबों और दलितों का शोषण कैसे होता है, इसे इस कहानी में भली-भाँति उकेरा गया है।

(८) सौभाग्य के कोड़े : ---

''सौभाग्य के कोड़े'' प्रेमचंद जी की एक आदर्शवादी कहानी है। यह कहानी सन् १९२४ के जून महीने में प्रकाशित हुई थी। [६१] कहानी का नायक नथुवा भंगी जाति का है। उसके माँ-बाप मर चुके थे। लखनऊ के रायसाहब ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़या था। इस संदर्भ में लेखक की टिप्पणी है- ''इन्हें इसकी परवाह न हुई कि मिशन में उसकी शिक्षा होगी, आराम से रहेगा; उन्हें यह मंजूर था कि वह हिन्दू रहे। अपने घर

के जूठे भोजन को वह मिशन के भोजन से कहीं पवित्र समझते थे। उनके कमरों की सफाई मिशन पाठशाला की पढ़ाई से बढ़कर थी। हिन्दू रहे, चाहे जिस दशा में रहे। ईसाई हुआ तो फिर सदा के लिए हाथ से निकल गया।'' ७०

नथुवा रायसाहब के बंगले में झाडू लगाता था। खाने को घर में इतना झूठा बच जाता था कि नथुवा जैसे कई-कई अनाथ उस पर पल सकते थे। पहनने के लिए उतरन भी मिल जाती थी। रायसाहब के दर्जनों भानजे-भतीजे पड़े रहते थे किन्तु उनकी निजी संतान केवल रत्ना थी। रत्ना बड़ी सुशील बालिका थी। नौकर तो क्या वह किसी भिखारी तक को दुत्कारती न थी। नथुवा को भी वह पैसे मिठाईयाँ आदि दे दिया करती थी। इससे वह रत्ना का कुछ मुँह लगा-सा हो गया था।

एक दिन रत्ना के कमरे में झाडू लगाते हुए उसे न जाने क्या सूझी कि वह रत्ना के पलंग पर सो गया। गर्व और आनंद से उसका हृदय पुलकित हो गया। वह मारे खुशी के दो-तीन बार पलंग पर भी उछला। वह सोचने लगा-''यह स्वर्गीय सुख मुझे कहाँ नसीब ! मुझे भगवान ने रायसाहब का बेटा क्यों न बनाया ? सुख का अनुभव होते ही उसे अपनी दशा का वास्तविक ज्ञान हो गया और चित्तक्षुब्ध हो गया।'' ७१

अचानक रायसाहब वहाँ आ पहुँचे। नथुवा को रत्ना के पलंग पर लेटा हुआ देखा तो उनका क्रोध सातवें आसमान को छूने लगा हंटर मंगवाकर रायसाहब ने नथुवा को बहुत पीट्टा। नथुवा हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था, किन्तु रायसाहब का क्रोध शांत होन का नाम ही नहीं लेता था किसी प्रकार बीच-बचाव करके रत्ना नथुवा को रायसाहब के चुंगल से छुड़ा लेती है। नथुवा प्राण बचाकर भागने लगता है। रास्ते में नथुवा को रत्ना की मेमसाहब मिलती है। वह उसे मिशन में चलने को कहती है परंतु नथुवा ईसाई नहीं बनना चाहता था। वह किसी तरह अपनी बिरादरीवाले लोगो के मुहल्ले में जाता है। वह सोचता है- ''आज कोई मेरी पीठ पर होता तो मजाल थी कि रायसाहब मुझे यों मारते। सारी बिरादरी जमा हो

जाती, कोई द्वार पर झाडू तक न लगाता । सारी रायसाहबी निकल जाती।'' ७२

इस प्रकार नथुवा भंगियों के मुहल्ले में चला जाता है वहाँ कुछ लोग गान-विद्या का अभ्यास कर रहे थे। नथुवा का गाना सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। उस्ताद सच्चे जौहरी थे। समझ गये कि यह काँच का टूकडा नहीं है। नथुवा को आश्रय मिल गया। तीन सालमें नथुवा के गाने की सारे शहर में धूम मच जाती है। नथुवा एकगुणी नहीं था, सर्वगुणी था। गाना, शहनाई बजाना, पखवाज, सारंगी, तंबूरा, सितार सभी कलाओं में वह दक्ष हो गया। यहाँ लेखक की एक टिप्पणी ध्यान देने योग्य है- ''ऐसे कितने ही रत्न पड़े हुए हैं, जो किसी पारखी से भेंट न होन के कारण मिट्टी में मिल जाते हैं।'' ७३

संयोग से उन्हीं दिनों में ग्वालियर में एक बहुत बड़ा संगीत संमेलन हुआ। उसमें देश-देशांतर से संगीत के बड़े-बड़े आचार्य निमंत्रित हुए थे। नथुवा के गुरू उस्ताद धूरे को भी आमंत्रण मिला। उस्ताद जब ग्वालियर चले तो अपने साथ नथुवा को भी ले लिया। एक सप्ताह तक ग्वालियर में बड़ी धूमधाम रही। नथुवा अब नाथूराम हो गया। ग्वालियर में उसने खूब नाम कमाया। उसे सोने का तमगा भी ईनाम में मिला। ग्वालियर के संगीत विद्यालय के अध्यक्ष ने उस्ताद धूरे से साग्रह निवेदन किया कि वे नाथूराम को संगीत विद्यालय में दाखिल करा दें। जिससे नाथूराम की संगीत-विषयक विधिवत् शिक्षा भी संपूर्ण हो जाय। उस्ताद मान गये। नाथूराम भी प्रसन्न हो गया। पाँच वर्षों में नाथूराम विद्यालय की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त देता है। संगीत के उपरांत भाषा, गणित और विज्ञान जैसे विषयों में भी अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय देता है। अब वह समाज का भूषण हो जाता है। अब उससे कोई नहीं पूछता कि उसकी जाति कौन-सी है। उसका रहन-सहन भी अब शिक्षित समुदाय के लोगों जैसा हो जाता है। नियमित रूप से संध्योपासना करने लगता है। मांस-मदिरा को हाथ नहीं लगाता। कोई कुलीन ब्राह्मण भी इतना आचार-विचार न करता

होगा । नाथूराम अब ना.रा.आचार्य के नाम से विख्यात हो जाते है । साधारण लोग तो उसे आचार्य ही कहते है । १८ वर्ष की आयु में इतनी ख्याती किसी बिरले को ही मिलती है । परंतु ख्याति-प्रेम वह प्यास है जो निरंतर बढ़ती ही जाती है । वह अगत्स्य ऋषि की भाँति सागर को पीकर भी कभी शांत नहीं होती । अंतः ना.रा.आचार्य योरोप के लिए प्रस्थान करते हैं । वे पाश्चात्य संगीत पर भी अपना अधिकार चाहते थे । अतः जर्मनी के सबसे बड़े संगीत विद्यालय में दाखिला ले लेते है । और पाँच बर्षों के निरंतर परिश्रम और उद्योग के बाद आचार्य की पदवी लेकर इटली की सैर करते हुए ग्वालियर लौट आते हैं । योरोप से लौटने के उपरांत एक कंपनी में उन्हें तीन हजार मासिक वेतन पर रखा जाता है । योरोप जाने से पहले भी वे संगीत-आयोजनों द्वारा हजारों रूपये कमा चुके थे । योरोप में भी ओपेराओं और नाट्यशालाओं के द्वारा उनकी खूब आवभगत और कमाई होती है । कभी-कभी तो एक दिन में इतनी आमदनी हो जाती थी, जितनी यहाँ के बड़े-बड़े गवैयो को वर्षो में भी नहीं होगी होगी । किन्तु लखनऊ से विशेष प्रेम होने के कारण आचार्य वहीं निवास करने का निश्चय करतें हैं ।

इधर रायसाहब की माली हालत खराब हो जाती है । उनका बंगला निलाम हो जाता है । यह बंगला वही कंपनी खरीद लेती है जिसने आचार्य को यहाँ बुलाया था । अब वही बंगला आचार्य को रहने के लिए दिया जाता है । एक दिन रायसाहब आचार्य से मिलते है तो ज्ञात होता है कि आचार्य अभी अविवाहित हैं । रायसाहब जब उन्हें पूछते है कि क्या आप ब्राह्मण है? तब आचार्य सशंक होकर कहते है कि योरोप यात्रा के बाद वर्ण भेद नहीं रहता । कर्म से चाहे जो कुछ हो, जन्म से तो शूद्र ही हूँ । रायसाहब कहते है- ''मैं भी कर्मों ही से वर्ण मानता हूँ । नम्रताशील विनय आचार धर्मनिष्ठा, विद्याप्रेम यह सब ब्राह्मणों के ही गुण हैं । मैं आपको ब्राह्मण ही समझता हूँ । जिसमें ये गुण नहीं वह ब्राह्मण नहीं, कदापि नहीं ।'' [७४]

आचार्य रायसाहब को अपनी असलियत बताना चाहते हैं परंतु प्रत्येक बार रायसाहब उस बात को टाल जाते हैं और अंततः आचार्य का विवाह रत्ना से हो जाता है। विवाह के उपरांत एक दिन आचार्य रत्ना से कहते हैं कि तुम नहीं जानती, मैंने तुम्हें कितना बड़ा धोखा दिया है। रत्ना कहती है कि वह सब जानती है। वह कहती है- "खूब जानती हूँ। बहुत दिनों से जानती हूँ। जब हम-तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे, मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे, मैं तुमको अपनी मिठाइयाँ देती थीं और तुम दौड़ कर लेते थे। तब भी मुझे तुमसे प्रेम था, पर हाँ वह दया के रूप में व्यक्त होता था।" ७५ आचार्य चकित होकर कहते हैं कि रत्ना यह जानकर भी तुमने मुझसे विवाह किया। रत्ना कहती है कि हाँ जानकर ही किया, न जानती तो शायद न करती। आचार्य उसे गले लगाते हुए कहते हैं कि तुम क्षमा की देवी हो। आचार्य रत्ना से पूछते है कि क्या रायसाहब को भी यह पता है। तब रत्ना कहती है कि उन्हें मालूम नहीं है और उनसे भुलकर भी न कहना, अन्यथा वे आत्मघात कर लेगें। इस बिंदु पर कहानी का अंत हो जाता है।

यहाँ पर प्रेमचंद जी की दलित चेतना को लेकर कुछ मुद्दे सामने आते हैं। कहानी उस दौर की है जब प्रेमचंदजी पर दयानंद सरस्वती तथा माहत्मा गांधी का प्रभाव था। कहानी का नायक नथुवा किसी भी मूल्य पर ईसाई होने से इन्कार कर देता है। कहानी के अंत में भी रायसाहब के सम्मुख यह बात अप्रकट रखी गयी है कि आचार्य वही नथुवा भंगी है जो कभी उनके टुकडों पर पला करता था। यदि यही कहानी प्रेमचंदजी कुछ वर्षों बाद लिखते तो उसका अंत कदाचित् दूसरे प्रकार का होता एक दूसरी बात जो यहाँ ध्यानार्ह है, वह यह कि कला, साहित्य, संगीत, खेल आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो धार्मिक-सांप्रदायिक दीवारों को ढहाने का काम कर सकते हैं।

कई बार वर्तमान के कटु प्रसंग जीवन के लिए उर्ध्वगामी हो उठते हैं। तुलसीदास को यदि रत्नावली ने न डाँटा होता, नरसिंह महेता को यदि

उनकी भाभी ने उलाहना न दिया होता तो ये दोनों महानुभाव कदाचित् इतने बड़े भक्तकवि न हो पाते। प्रस्तुत कहानी में भी रायसाहब के हंटर के कोड़े "नथुवा"को "ना.रा.आचार्य"बना देते है इस प्रकार यह पीड़ादायी कोड़े "सौभाग्य के कोड़े" में परिवर्तित हो जाते हैं। कहानी आदर्शवादी ढंग की है परंतु उसमें भी तमाम बीज मिलते हैं जो प्रेमचंद के बाद के प्रगतिवादी चिंतन का संकेत देते हैं।

(९) सद्गति : ---

"सद्गति" कहानी सन् १९३१ अक्तूबर में "मानसरोवर" में प्रकाशित हुई थी। [७६] दलितविमर्शकी दृष्टि से इस कहानी का विशेष महत्व है। वर्ण-व्यवस्था सामाजिक सोच पर किस कदर हावी है, इसे यहाँ भली-भाँति देखा जा सकता है। दुखी चमार को अपनी बिटिया की सगाई करना था। इस हेतु "साइत-सगुन"के लिए वह पंडित घासीराम के यहाँ जाता है।

ब्राह्मण-देवता के घर पर आमंत्रित करना है, अतः दुखी चमार अपनी पत्नी झुरिया को कई प्रकार की हिदायतें देता है। खाटौली को धोया जाता है। महुए के पत्ते तोड़कर पत्तल बनाई जाती है, क्योंकि पत्तल पवित्र होती है। उसमें बड़े-बड़े लोग खाते हैं।

झुरिया पंडितजी को देने का सीधा थाली में रखने की बात करती है। उस पर दुखी कहता है- "कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाय और थाली भी फूटे! बाबा थाली उठाकर पटक देंगे। उनको बड़ी जल्दी किरोध चढ़ आता है। किरोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं, लड़के को ऐसा पीटा आजतक टूटा हाथ लिए फिरता है। पत्तल में सीधा भी देना, हाँ। मुदा तू छूना मत। झूरी गौंड़ की लड़की को लेकर साह की दूकान से सब चीजें ले आना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आध सेर चावल, पाँव भर दाल, आधा पाव घी, नोन, हल्दी और पत्तल के

किनारे चार आने पैसे रख देना। गौंड़ की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़कर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नहीं तो गजब हो जायगा।'' ७७

दूसरी ओर पं.घासीराम की चर्चा का भी बड़ा व्यंग्यात्मक चित्र लेखक ने खींचा है। यथा-'' पं.घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासना में लग जाते। मुँह-हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी थी। उसके बाद आधा धंण्टे तक चन्दन रगड़ते, फिर आईने के सामने एक तिनके से माथे पर तिलक लगाते। चन्दन की दो रेखाओं के बीच में लाल शेरी की बिन्दी होती थी। फिर छाती पर, बाँहो पर चन्दन की गोल-गोल मुद्रिकाएँ बनाते। फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चन्दन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती उतारते, घंटी बजाते। दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते। तब तक दो-चार जजमान द्वार बाहर आते। ईशोपासना का तत्काल फल मिल जाता। वही उनकी खेती थी।'' ७८

यहाँ पर यह रेखांकित किया गया है कि पूजापाठ तथा धर्म के बाह्य अनुष्ठानों द्वारा ब्राह्मण वर्ग के लोग अपनी पवित्रता और दिव्यता की धाक बिठा देते हैं। क्रोध गुण नहीं, अपितु दुर्गुण है। परंतु पंडितजी का क्रोध भी उनके देवतापन का लक्षण बन जाता है। एक स्थान पर दुखी कहता है- ''इसी से तो संसार पंडितो से डरता है, और सब के रूपये मारे जाते हैं, ब्राह्मण के रूपये भला कोई मार तो ले ! घर भर का सत्यानाश हो जाय, पाँव गल-गल कर गिरने लगे।'' ७९

दुखी पंडित जी को साइत-सगुन के लिए बुलाने गया था। पंडित जी के यहाँ खाली हाथ नहीं जाते इसलिए घास का एक बड़ा-सा गठ्ठर लेकर वह पहुँचता है। खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता। उसे खाली हाथ देखकर तो बाबा दूर ही से दुत्कार देते। ८०

पं.घासीराम कहते हैं कि उन्हें छुट्टी नहीं है और सांझ तक कभी आ

जायेंगे । इस पर दुखी कहता है कि नहीं महाराज, जल्दी मरजी हो जाय सब सामान ठीक कर आया हूँ । सामान की बात सुनकर पंडितजी कुछ पसीजते हैं, पर उसके श्रम का शोषण करना नहीं चुकते । वे कहते है- "इसे (घास का गठ्ठर) गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार को साफ कर दे । यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई । उसे भी गोबर लीप दे । तब तक मैं भोजन कर लूं । फिर जरा आराम कर के चलूँगा । हाँ, यह लकडी भी चीर देना । खलिहान में चार खाँची भूसा पड़ा है । उसे भी उठा लाना और भूसौली में रख देना ।" [८१]

इस प्रकार "साइत" देखने जैसे सामान्य से काम के लिए पंडितजी दुखी चमार का कितना आर्थिक-शारीरिक शोषण करते हैं, उसे यहाँ संकेतित किया गया है । देवता कहे जानेवाले पंडितजी में दया का छींटा भी नहीं है । दुखी को इतना सारा काम बता देते है परंतु उसे खाने तक के लिए पूछते नहीं है । दुखी का घर पंडितजी के यहाँ से १ मील की दूरी पर था । खाने चला जाय तो पंडितजी के बिगड़ने का भय था । सफाई काम और लीपने का काम तो कर देता है परंतु लकडी की मोटी-सी गांठ को फाड़ने में उसके दम फूल जाते हैं । दुखी घास छिलने का काम करता था । लकडी फाड़ने का उसे अभ्यास भी नहीं था । और यह तो ऐसी गांठ थी, जिस पर पहले भी कितने ही भक्त अपना जोर आजमा चुके थे । खाना तो खाया नहीं था । दुखी सोचता है कि एक चिलम तम्बाकू पीने को मिल जाती तो शायद कुछ ताकत आ जाती । यहाँ भी शायद कुछ ताकत आ जाती । यहाँ भी लेखक की टिप्पणी बड़ी सार्थक है । यथा-"ब्राह्मण को पुरा है ब्राह्मण लोग हम नीच जातों की तरह तम्बाकू थोड़े ही पीते है ।" [८२]

अतः वह एक गौंड के यहाँ चला जाता है । यहाँ से चिलम तम्बाकू तो मिल जाती है पर आग नहीं मिलती है । आग के लिए पंडिताइन के पास जाता है तो पंडिताइन उसे दुत्कार देती है कि चमार होकर वह उनके घर में चला आया । मानो हिन्दू का घर न हुआ कोई सराय हुई । यहाँ

लेखक ने यह भी संकेतित किया है कि चमार, धोबी, पासी आदियों को ऊँची जाति के हिन्दू नहीं मानते । उनके हिन्दुत्व के दायरे में केवल ऊँची जाति के हिन्दू ही आते हैं ।

चिलम पीकर दुखी फिर से जुट जाता है, पर गांठ में मामूली दरार तक नहीं आती । इतने में चिखुरी गोंड़ आता है और पूछता है कि कुछ खाने को मिला कि नहीं, या काम ही कराना जानते हैं । तब दुखी कहता है कि कैसी बात कहते हो चिखुरी ब्राह्मण की रोटी हमको कैसे पचेगी । इस पर चिखुरी गोंड जो कहता है वह ध्यान देने योग्य है- "पचने को तो पच जायगी, पहले मिले भी तो । मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया । जमींदार भी कुछ खाने को देता है । हाकिम भी बेगार लेता है तो थोड़ी बहुत मजूरी दे देता है । यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं ।" [८३]

चिखुरी को दुखी पर दया आ जाती है और कोई आध घण्टे तक वह गांठ पर कस-कसकर कुल्हाड़ी चलाता है । पर गांठ में कोई दरार नहीं पड़ती । वह कुल्हाड़ी फेंककर चला जाता है । तब दुखी गांठ को छोड़कर दूसरे काम में लग जाता है । झौवा लेकर भूसा ढोने का काम करता है । चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ । तब कहीं पंडितजी की नींद खुली । मुँह-हाथ धोया पान खाया और बाहर निकले । देखा तो दुखी झौवा सिर पर रखे सो रहा है । बिगड़कर जोर से बोले- "अरे, दुखिया तू सो रहा है? लकड़ी तो अभी ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई है । इतनी देर तू करता क्या रहा? मुट्ठी भर भूसा ढोने में संझाकर दी । उस पर सो रहा है । उठा ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल । तुझसे जरा-सी लकड़ी नहीं फटती फिर साइत भी वैसी ही निकलेगी, मुझे दोष मत देना ! इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसी आँख बदली ।"[८४]

साइत के डर से दुखिया फिर से जुट जाता है । आधे घण्टे बाद लकड़ी बीच में से फट जाती है और दुखिया चक्कर खाकर गिर पड़ता है । दुखिया का भूखा प्यासा थका हुआ शरीर जवाब दे जाता है । तब भी

पंडितजी उसे कहते हैं-उठकर दो-चार हाथ और लगा दे, पतली-पतली चैलियाँ हो जायें। परंतु दुखी न उठ सका। उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। पंड़िताइन कहती है कि चमारौने में कहला भेज दो कि मुर्दा उठा ले जायें। चिखुरी गोंड चमरौने में जाकर कहाता है- "खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडितजी होंगे, तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़े जाओगे।"[८५]

पुलिस के डर से चमरौने का कोई आदमी लाश उठाने नहीं जाता। दस-पाँच चमारिनें हाय-हाय करती वहाँ पहँचती हैं और सिर पीट-पीटकर रोती हैं। जहाँ दुखिया की लाश पड़ी थी कुँए का रास्ता उधर ही से जाता था। अतः समस्या आई, पानी कैसे भरा जाय! चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाय। पंडितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की; पर चमारों के दिल पर पुलिस का रौब छाया हुआ था। एक भी न भिनका। आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा। देवताओं का सोना मुश्किल हो गया। पर लाश उठाने कोई चमार न आया और ब्राह्मण चमार की लाश कैसे उठाते! भला ऐसा किसी शास्त्रपुराण में लिखा है? कहीं कोई दिखा दे। अंततः पंडितजी रस्सी का फंदा बनाकर उसे लाश के पैर में डालकर लाश को धसीटते हुए गाँव के बाहर फेंक आते हैं। लौटकर स्नान करते हैं, दुर्गापाठ पढ़ते है और घर में गंगाजल छिड़क देते है। कहानी के अंतिक वाक्य है- "उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिध्ध कुत्ते और कौअे नोंच रहे थे। यही जीवन-पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।"[८६]

इस प्रकार कहानी का शीर्षक बड़ा व्यंग्यात्मक है। दुखिया चमार साइत निकालने जैसे छोटे से कार्य के बदले भूखा-प्यासा दिनभर कड़ी बेगार जाते हैं। ब्राह्मण देवता का काम करते हुए मृत्यु होती है। अतः उसकी सद्‌गति हो गई। वस्तुतः यहाँ मृत्यु नहीं पर हत्या है। किन्तु हत्या तो बड़े लोगो की होती है, छोटे लोगो की तो सद्‌गति होती है। लोग

मानते हैं कि ब्राह्मण का कार्य करते हुए मृत्यु हुई है, अतः अवश्य उसकी सद्गति होगी। दूसरे जन्म में उसका उद्धार होगा।

प्रस्तुत कहानी में जहाँ पंडितजी महाराज के अमानवीय व्यवहार को उद्घाटित किया है वहाँ धर्मान्धता के कारण छोटी जाति के लोगों में जो एक डर और आतंक बैठा हुआ है उसे भी स्पष्ट किया है। डॉ.मनोहर बंदोपाध्याय ने यथार्थ लिखा है-

"The Story thus presents which poor uneducated people have fallen prey for generations. It is an ironic attack on the religious bigotry and the social systems in rulal India."[८७]

(१०) सवा सेर गेहूँ : ---

प्रेमचंदजी की यह कहानी नवम्बर १९२४ को "चाँद" में प्रकाशित हुई थी। [८८] प्रस्तुत कहानी में गाँव के महाजन, अनपढ़ धर्मभीरू छोटी जाति के लोगो का आर्थिक शोषण किस प्रकार करते हैं उसे यथार्थ ढंग से उकेरा गया है।

किसी गाँव में शंकर नामक एक कुरमी किसान रहता था। किसी प्रकार का छक्का-पंजा न जानता था। भोजन मिला तो खा लिया, नहीं पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो गए। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो उसे इस निवृत्ति मार्ग का त्याग करना पड़ता था। अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण में जाना पड़ता था। खुद भूखा सो सकता था, पर साधू को कैसे भूखा सुलाता, भगवान के भक्त जो ठहरे। एक दिन संध्या समय एक महात्मा पधारे। घर में जौ का आटा था, वह उसे कैसे खिलाता। शंकर ने सोचा कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाऊँ। पर गाँव भर में गेहूँ का आटा कहीं भी न मिला। यहाँ लेखक की एक टिप्पणी ध्यान देने योग्य है- "गाँव में सब मनुष्य ही मनुष्य थे देवता

एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्यपदार्थ कैसे मिलता।'' [८९]

महात्मा जी के सौभाग्य से और शंकर के दुर्भाग्य गाँव के एक विप्र महाराज के यहाँ थोड़े-से गेहूँ मिल गए। शंकर को विप्र महाराज से सवा सेर गेहूँ मिले और महात्माजी को भोजन करवाया। महात्माजी तो भोजन करके लंबी तान गये। दूसरे दिन आर्शीवाद देकर अपनी राह ली। विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी लिया करते थे। शंकर खलिहानी में पंसेरी भर गेहूँ दे दिया करता था। उस साल शंकर ने सोचा कि सवा सेर गेहूँ के बदले खलिहानी में पंसेरी के बदले कुछ ज्यादी ही खलिहानी दे दूँगा और इस प्रकार चैत के महीने में शंकर ने विप्र महाराज के डेढ़ पंसेरी गेहूँ दे दिया और अपने को उऋण समझ लिया। उसके बाद शंकर ने न कोई चार्चा की, न विप्र महाराज ने ही कभी माँगा। सरल स्वभाव के शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए उसे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गए, विप्रजी विप्र से महाजन हो गए, शंकर किसान से मजदूर हो गया। संयुक्त परिवार था तो किसी तरह घर-गृहस्थी चल रही थी परंतु बँटवारा होने के बाद शंकर की माली हालत खराब हो गई। खेती केवल मर्यादा- रक्षा का साधन-मात्र रह गई। जीविका का भार मजदूरी पर आ पड़ा। एक दिन विप्रजी महाराज ने शंकर को बीच राह में टोककर कहा- ''शंकर, कल आकर के अपने बीज-बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब के बाकी पड़े हुए हैं और तू देना का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?'' [९०]

यह कहकर विप्रजीने उस सवा सेर गेहूँ का जिक्र किया जो सात वर्ष पूर्व शंकर को दिए थे। शंकर सुनकर अवाक रह गया। शंकर सोचता है- ''हे ईश्वर! मैंने इनको कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन-सा काम किया? जब पोथी-पत्रा देखने, साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ-न-कुछ ''दक्षिणा'' ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ! सवा सेर अनाज को अंडे के भाँति सेकर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया जो मुझे

निगल ही जायेगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेहूँ तौलकर दे देता, क्या नीयत से चुप्पी साधे बैठे रहे ?" ११

शंकर विप्र महाराज से कहता है-"महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानों से सेर-सेर, दो-दो सेर दिया है, अब आप आज साढ़े पाँच मन माँगते हैं, मैं कहाँ से दूँगा ?"१२ उसी के उत्तर में विप्रजी महाराज कहते हैं-"लेखा जौ-जौ बखसीस सौ-सौ। तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं, चाहे एक की जगह चार पंसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पाँच मन लिख हुआ है; जिससे चाहे हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।" १३

इस प्रकार सवा सेर गेहूँ सात साल में साढ़े पाँच मन हो जाते हैं। विप्रजी महाराज साढ़े पाँच मन गेहूँ का दाम साठ रूपये लगाकर शंकर से दस्तावेज लिखवा लेते हैं। शंकर साल भर कड़ी महेनत करके साठ रूपये का जुगाड़ कर लेता है पर तब तक में पंद्रह रूपया व्याज और बढ़ जाता है। पंद्रह रूपये के लिए शंकर पूरे गाँव को छान मारता है पर रूपये उसे नहीं मिलते। ऐसा नहीं था कि किसी के पास रूपये नहीं थे, परंतु शंकर को रूपये इसलिए नहीं मिलते कि पंडितजी के शिकार को छोड़ने की हिम्मत किसी में नहीं थी। शंकर निराश हो गया। उसे गांजे और चरस का चस्का लग गया। इसी भाँति तीन वर्ष निकल गये। विप्रजी महाराजने एक बार भी तकादा नहीं किया। चतुर शिकारी कि भाँति वह अपना अचूक निशाना साधे बैठे थे। पहले से शिकार को चौकन्ना कर देना उनकी नीति के खिलाफ़ था।

तीन वर्ष बाद फिर एक दिन शंकर को बुलाकर पंडितजी महाराज उसे हिसाब दिखाते हैं कि उसके वह पंद्रह रूपये अब १२० रूपये हो गए हैं। शंकर कहता है कि इतने रूपये तो वह कभी नहीं दे सकता। वह कहता है एक बैल है वह ले लीजिए विप्र महाराज कहते हैं कि बैल-बधिया लेकर क्या करना है। वह शंकर से कहते हैं- "तुम तो हो। आखिर तुम भी

कहीं मजूरी करने जाते ही हो, मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना ही पड़ता है। सूद में तुम हमारे यहाँ काम किया करो। जब सुभीता हो, मूल को दे देना। सच तो यह है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रूपये नहीं चुका लो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है। इतनी बड़ी गठरी में किस एतबार पर छोड दूँ कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने सूद देते जाओगे।'' [९४]

शंकर कहता है कि वह सूद पर काम करेगा तो खायेगा क्या। महाराज अपनी योजना उसके सामने रखते हैं - ''तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पाँव कटा के बैठेंगे। रहा मैं, तुम्हें आधा सेर जौ रोज कलेवा के लिए दे दिया करूँगा। ओढ़ने को साल में कम्बल वा जाओगे। एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा, और क्या चाहिए। यह सच है कि और क्या चाहिए। यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें रूपये भरने के लिए रखता हूँ।'' [९५]

इस प्रकार शंकर बंधवा मजदूर हो जाता है। शंकरने सवा सेर गेहूँ के बदले विप्रजी के यहाँ बीस साल तक गुलामी की। शंकर की मृत्यु के बाद विप्रजी ने उसके बेटे की गरदन पकड़ी कहानी के अंत में लेखक की टिप्पणी है- ''आज तक वह विप्रजी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं ईश्वर ही जाने। पाठक ! इस वृत्तांत को कपोल-कल्पित न समझिए। यह सत्य धटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।'' [९६]

''सवा सेर गेहूँ'' महाजनी सभ्यता के शोषणोन्मुखी चेहरे को उद्घाटित करनेवाली कहानी है। पर जैसा क प्रेमचंद की प्रत्येक रचना में होता है उसके अंतर्गत लेखकीय या पात्रपरक ऐसी टिप्पणियाँ होती है जो कहानी को विशिष्टता प्रदान करती है। विप्रजी महाराज जब शंकर से कहते हैं कि वह छटाँकभर गेहूँ भी न छोड़ेंगे। यदि वह यहाँ न देगा तो भगवान के घर देना पड़ेगा। विप्र महाराज की बात से शंकर काँप उठता है। यहाँ पर

लेखक की एक टिप्पणी है-"हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे; वहाँ तौल यहाँ से कुछ बड़ी न होगी। कम-से-कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना तार्किक इतना व्यवहार-चतुर न था। एक तो ऋण, वह भी ब्राह्मण का, बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा।" १७

शंकर विप्र महाराज को कहता है कि तुम्हारा जितना होगा यही दूँगा मगर तुमने राई का पर्वत बना दिया। ब्राह्मण होकर तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा करते तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता। में तो दे दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा। शंकर की इस बात पर विप्र महाराज की जो टिप्पणी है वह ध्यान देने योग्य है। यथा-"वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई-बंधु हैं। ऋषि-मुनि, सब तो ब्राह्मण ही है; देवता ब्राह्मण हैं; तो कुछ बने बिगड़ेगी संभाल लेंगे।" १८

इस लोक-परलोक की बात को यदि इसी लोक पर लागू करके देखे तो स्पष्ट होगा कि छोटी जाति के लोगो को जितना पुलिस का, सरकारी अमलों का, सरकारी लोगो का डर होता है उतना ऊँची जाति के लोगों को नहीं होता क्योंकि वहाँ भी तो (सरकार में) सब उनके ही भाई-बंधु होते हैं।

विप्र महाराज शंकर का जो शोषण करते हैं और धर्मकी आड़ लेकर करते हैं उसके संदर्भ में डॉ.मनोहर बंदोपाध्याय ने बिल्कुल यथार्थ टिप्पणी दी है। यथा-

"He threatens him of severe consequences after death if he fails to repay the debt to the priest. The innocent orthodox farmer is terrified at the very thought to offend the priest for fear of curses and decides to repay it at all costs. But the sum goes on multiplying.

The poor farmer is exploited for twenty years and yet he remains a debtor to the priest even after death.'' [९९]

(११) आगा-पीछा : ---

''आगा-पीछा'' कहानी दिसम्बर सन् १९२८ में ''माधुरी''में प्रकाशित हुई थी। [१००] प्रस्तुत कहानी दो दलित जातियों के मानसिक द्वन्द्व और संधर्ष की कहानी है। श्रद्धा कोकिला नामक वेश्या की बेटी है और भगतराम चमार का लड़का है। यद्यपि वेश्या की कोई जाति नहीं होती, उसे अस्पृश्य नहीं माना जाता, बड़े घरो में भी उसकी आनद-रफ़त रहती है; परंतु समाज में उसे सम्मान की द्रष्टि से देखा नहीं जाता। वेश्या को समाज में इज्जतदार माना जाने वाला व्यक्ति रख तो सकता है, उसे ब्याहता नहीं बना सकता। इन अर्थों में उसे भी दलित ही कहा जा सकता है। और भगतराम तो चमार जाति का होने के कारण दलित ही है। किन्तु दोंनो की स्थितियों में कुछ अंतर है। कोकिला अपने व्यवसाय को छोड़कर कई वर्षों से एक पवित्र, निर्मल, धार्मिक जीवन व्यतीत कर रही है। श्रद्धा सुशिक्षित ही नहीं, विदुषी भी है। भगतराम अर्थशास्त्र में एम.ए. करके कोलेज में प्राध्यापक हो गया है, अतः उसकी स्थिति को भी कुछ समुन्नत ही कहा जा सकता है।

एक सभा में श्रद्धा की तेजस्वी वक्तृता सुनकर भगतराम उससे प्रभावित होता है। फलतः उससे परिचय बनाता है। विचारों और रूचिगत समानताओं के कारण परिचय प्रणय में परिवर्तित होता है। कोकिला भी इन संबंधो को मान्यता देती है। जब विवाह का प्रश्न आता है, तब उसमें भगतराम की और से कुछ रूकावट आती है। भगतराम के माँ-बाप नहीं चाहते कि उनका बेटा एक पतुरिया की बेटी से विवाह करे। परंतु श्रद्धा की

सेवा-टहल और भक्ति तथा नम्रता से वशीभूत होकर भगतराम के माँ-बाप, चौधरी और चौधराइन, इस विवाह के लिए राजी हो जाते हैं।

दोनों तरफ विवाह की तैयारियाँ शुरू हो जाती है, परंतु विवाह के कुछ दिन पूर्व मानसिक उहापोह तथा संताप और उद्धिग्नता के कारण भगतराम ज्वरग्रस्त हो जाता है। वस्तुतः भगतराम के अचेतन मन में एक उहापोह, एक "आगा-पीछा" चल रहा था कि क्या श्रद्धा अपने परम्परागत संस्कारों से ऊपर उठ पायेगी। इस अंतर्द्वन्द्ध के कारण वह ज्वरग्रस्त हो जाता है। भगतराम के पिता उसे "हवा-बयार" की चपेट समझते हैं और उसका डाक्टरी इलाज नहीं करवाते। भगतराम अपनी इस मानसिक ग्रंथि से मुक्त तो हो जाता है, परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। जीवन के अंतिम क्षणो में ही वह प्रेम का साक्षात्कार कर सकता है। अंतिम क्षणों में भगतराम श्रद्धा के आँसुओं से धुले हुए कपोलों को चूम लेता है और श्रद्धा भी उस चुंबन का प्रत्युत्तर देते हुए कहती है-"प्यारे, मै। तुम्हारी हूँ और सदा तुम्हारी ही रहूँगी।" [१०१]

इस प्रकार प्रत्यक्षतः देखा जाय तो प्रस्तुत कहानी में अछूत समस्या का कोई उल्लेख नहीं है, परंतु कहानी के ताने-बानों को यदि सूक्ष्मता से परखें तो ज्ञात होता है कि छोटी जातियों में भी ऊँच-नीच आदि के भाव देखे जाते हैं। हजारों वषों से चले आ रहे परम्परागत सामाजिक संस्कारों को बदलना कितना कठिन है, उसे भगतराम के चरित्र में देख सकते हैं। सामाजिक संस्तरण की द्रष्टि से श्रद्धा की स्थिति भगतराम से श्रेष्ठ है किन्तु वेश्या, रंडी या पतुरिया को लेकर जो सामाजिक संस्कार बने हुए हैं, उनमें श्रद्धा का स्थान चमार भगतराम से भी हेय करता है। भगतराम जब अपने पिता चौधरी से कहता है कि मैं तो इसे अपना भाग्य समझता हूँ कि वह लड़की मुझसे शादी के लिए राजी है। अगर वह आज चाहे, किसी बड़े-से-बड़े रईस के घर में शादी कर सकती है। उसकें उत्तर में चौधरी कहता है- "रईस उससे ब्याह न करेगा-रख लेगा। तुम्हें भगवान समाई दे तो एक नहीं चार रखो। मरदों के लिए कौन रोक है। लेकिन जो

ब्याह के लिए कहो तो ब्याह वही है, जो बिरादरी में हो। ------रंडी की बेटी चाहे इन्नर की परी हो, तो भी रंडी की बेटी है।" [१०२]

श्रद्धा की सेवावृत्ति विनम्रता और शीलनता से प्रभावित होकर चौधरी-चौधराइन तो मान जाते हैं परंतु भगतराम के भीतर का मानसिक उहापोह उसे ले डूबता है। अपनी रूग्णावस्था में मृत्यु से कुछ पूर्व भगतराम श्रद्धा, से कहता है- "तुम आ गई श्रद्धा मैं तुम्हारी राह देख रहा था। यह अंतिम प्यार लो। आज ही सब "आगा-पीछा" का अंत हो जायेगा; जो आज से तीन वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था। इन तीन वर्षों में मुझे जो आत्मिकयंत्रणा मिली है, हृदय ही जानता है। तुम वफा की देवी हो; लेकिन मुझे रह-रहकर ये भ्रम होता था क्या तुम खून के असर का नाश कर सकती हो? क्या तुम एक ही बार में अपनी परम्परा की नीति छोड़ सकोगी? क्या तुम जन्म के प्राकृतिक नियमों को तोड़ सकोगी?"[१०३]

जीवन के अंतिम क्षणों में भगतराम ग्रंथि मुक्त हो जाता है, परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। ज्वरग्रस्त अवस्था में उसकी मृत्यु होती है। यहाँ लेखकने दलित समाज के अंधविश्वास की ओर भी संकेत किया है हो सकता है, समय रहते भगतराम का यदि उचित इलाज करवाया जाता तो कदाचित् वह बच जाता, परंतु भगतराम के पिता उसे शारीरिक बीमारी नहीं, कुछ दूसरे प्रकार की बीमारी मानते हैं। वह कहते है- "डॉक्टर आकर क्या करेगा। वही पीपलवाले बाबा तो हैं। दवा शुरू करना उनसे और रार बढ़ाना है। रात जाने दो। सवेरा होते ही एक बकरा ओर बोतल दारू उनकी भेंट की जायेगी। बस और कुछ करने की जरूरत नहीं। डॉक्टर बीमारी की दवा करता है कि हवा-बचार की ? बीमारी उन्हें कोई नहीं है, कुल के बाहर ब्याह करने ही से देवता लोग रूठ गए है।" [१०४]

परंतु लेखक की वस्तुवादी यथार्थ दृष्टि यहाँ भी दृष्टिगत होती है। लेखक भलीभाँति देख सका है कि आर्थिक उन्नति जातिगत चेतना को उठाने में सहायक होती है। जाति-बिरादरी से डरनेवाले चौधरी-चौधराइन भी अंततः श्रद्धा-भगतराम के संबंध पर स्वीकृति की मुहर लगाते हैं क्योंकि

आर्थिक दृष्टया अब वह संपन्न हो गये हैं। चौधराइन कहती है-''राम का नाम लेकर ब्याह करो। बहुत होगा रोटी पड़ जायेगी। पाँच बीसी में तो रोटी होती है, कौन छप्पन टके लगते हैं।''[१०५]

चौधराइन ऐसा कह पाती है, उससे ही उनकी आर्थिक संपन्नता और स्थिरता का पता चलता है। भगतराम भी अब कोई मामूली व्यक्ति नहीं रहा है। कॉलेज में प्राध्यापक हो गया है और अच्छा कमाता-खाता है। अतः इतना तो असंदिग्धतया कहा जा सकता आर्थिक संपन्नता और आत्मनिर्भरता के कारण ही व्यक्ति जाति बिरादरी के भय और सीमाओं से ऊपर उठ पाता है।

(१२) सभ्यता का रहस्य : ---

''सभ्यता का रहस्य''कहानी सन् १९२५ के मार्च महीने में माधुरी में प्रकाशित हुई थी।[१०६] प्रस्तुत कहानी अपने व्यंग्यात्मक तेवरों के लिए यारे दमड़ी को लेकर सभ्यता के रहस्य को उद्घाटित किया है। रायसाहब बहुत अधिक शिक्षित और बड़े ओहदेदार है। बहुत अच्छा वेतन पाने पर भी उनकी आमदनी खर्च के लिए काफ़ी नहीं होती। अतः अपना भत्ता बढ़ाने के लिए दौरे पर बहुत रहेते हैं। अफसरों के पूछने पर कि इतने दौरे क्यों करते हो, उनका जवाब है कि इस जिले का काम ही कुछ ऐसा है कि यदि खूब दौरे न किए जायँ तो रिआया शांत नहीं रह सकती। परंतु दरहकीकत बात यह है कि रायसाहब उतने दौरे वास्तव में करते नहीं है जितने की अपने रोज नामचे में लिखते हैं। उनके पड़ाव शहर से काफ़ी दूर होत हैं, खेमे वहाँ गड़े रहते हैं, केम्प के अमले वहाँ पड़े रहते हैं और रायसाहब घर पर मित्रों के साथ-गप-शप करते रहते हैं। पर किसी की कोई मजाल नहीं कि रायसाहब की नेक नीयती पर कोई संदेह कर सके! उनके सभ्य पुरुष होने में किसी को शंका नहीं हो सकती।[१०७] यही रायसाहब दमड़ी घसियारे पर दो रूपये का जुर्माना ठोक देते हैं। यह एक

रात गैरहाजिर रहने की सजा थी। बेचारा दिनभर का काम कर चुका था, रात को वहाँ न सोया उसी का दंड। यहाँ लेखक की एक टिप्पणी है- ''दमड़ी भी अगर होशियार होता, तो जरा रात रहे आकर कोठरी में सो जाता। फिर किसे खबर होती कि यह रात को कहाँ रहा। पर गरीब इतना चंट न था।'' [१०८]

दमड़ी के पास कुछ छः बिस्वे जमीन थी। पर उतने ही प्राणियों का खर्च था। सब खेती में लगे रहते थे पर पेटभर रोटियाँ करते तो आराम से रह सकते थे। लेकिन मौरूसी किसान मजदूर कहलाने का अपमान कैसे सह लेता? अपनी बदहाली छिपाने के लिए उसने दो बैल बाँध रखे थे और खुद रायसाहब के यहाँ घसियारे का काम करता था। उसके वेतन का बहुत बड़ा हिस्सा बैलों के दानेचारे में ही उड़ जाता था। ''यह सारी तकलीफें मंजूर थी लेकिन खेती छोड़कर मजदूर बन जाना मंजूर न था। किसान की जो प्रतिष्ठा है वह कहीं मजदूर की हो सकती है, चाहे वह रूपया रोज ही क्यों न कमाये? किसानी के साथ मजदूरी करना इतने अपमान की बात नहीं, द्वार पर बंधे हुए बैल उसकी मान-रक्षा किया करते हैं, पर बैलों को बेचकर फिर कहीं मुँह दिखलाने की जगह न रह सकती है।'' [१०९] ''गोदान'' के होरी और ''पूस की रात''के हल्कू की भी यही समस्या है।

एक बार रायसाहब दमड़ी कहते भी हैं कि बैलों को बेच क्यों ड़ालता। तब दमड़ी कहता है- ''सरकार, बिरादरी में मुँह दिखाने लायक न रहूँगा। लड़की की सगाई न हो पायेगी। टाट बाहर कर दिया जाऊँगा।''[११०] इस प्रकार अनेक प्रकार की तकलीफों को सहते हुए, मजदूरी की आमदनी खेती में झोंकते हुए भी दमड़ी अपने पुरखों की कुल-प्रतिष्ठा के लिए दरवाजे पर बैल बांधता है। यह बैल मानो उसके लिए ''स्टेटस स्मिबोल'' थे। दूसरी तरफ रायसाहब वालिद साहब के कालकवलित होते ही उनके यहाँ परम्परागत रूप से मनाये जानेवाले जन्माष्टी के उत्सव को बंद कर देते हैं। क्योंकि उसमें ४-५ हजार की चपट पड़

जाती थी। पहले कस्बे में किसी के भी यहाँ शादी होती, लकड़ी उनके यहाँ से जाती थी। पुश्तों से यह रस्म चली आ रही थी परंतु जब से रायसाहब के हाथ में सत्ता आई उन्होंने इस प्रथा को भी बंद करवा दिया। इससे सालमें कम-से-कम ५०० रूपयें की बचत हो गई। शूरू में लोगोंने बावेला मचाया परंतु बाद में सब कोलाहल शांत हो गया। यहाँ पर रायसाहब के मुंशीजी की टिप्पणी है- "मेरे दिल में फिर सवाल पैदा हुआ, दोंनो में कौन सभ्य है, कुल-प्रतिष्ठा पर प्राण देनेवाला मूर्ख दमड़ी; या धन पर कुल-मर्यादा को बलि देनेवाले रायरतन किशोर !" [१११]

कहनी का तीसरा प्रसंग तो अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। रायसाहब के इजलास में एक बड़े रईस का मुकदमा आता है। मामला खून का था। रईस साहब जमानत के लिए रायसाहब की खूब खुशामत करने लगे। मामला ईज्जत का था। रईससाहबने सोच लिया था चाहे रियासत बिक जाय पर मुकदमें से बेदाग निकलना है। डालियाँ लगायी गई, सिफारीशें पहुँचायी गईं, पर रायसाहब पर कोई असर न होता था। प्रत्यक्षतः रिश्वत की चर्चा करने की हिम्मत न पड़ती थी। आखिरकार रईससाहबने एक रास्ता ढूंढ निकाला। अपनी पत्नी को रायसाहब की पत्नी से मिलने के लिए भेज दिया। इधर-उधर की बातों के बाद बीस हजार में मामला तय हुआ। रायसाहब पहले तो बिगड़ने का नाटक करते हैं परंतु बाद में अपनी स्त्री की बात मान लेते हैं। दूसरी ओर उसी रात दमड़ी अपने बैलों को लेकर परेशान था। बैलों को चारा नहीं मिला था और वह दमड़ी की ओर अपेक्षा और याचना की दृष्टि से देख रहे थे। बैलों की यह भूख दमड़ी से देखी नहीं गई और वह मुखिया के खेत से थोड़ा चारा काट लाया। परंतु थाने के सिपाही ने उसे घर लिया। थानेदार ने चालान कर दिया और मुकदमा रायसाहब के इजलास में ही पेश हुआ। रायसाहब कहते हैं- "तू मेरा नौकर न होता तो मैं हल्की सज़ा देता; लेकिन तू मेरा नौकर है, इसलिए कि से-कड़ी सज़ा दूँगा। मैं यह नहीं सुन सकता कि रायसाहब ने अपने नौकर के साथ रियायत की।" [११२]

रायसाहब ने दमड़ी को छः महीने की सख़्त कैद का हुक्म सुना दिया और उसी दिन उन्होंने खून के मुकदमें में रईससाहब को जमानत दे दी। कहानी के अंत में मुंशीजी की टिप्पणी है-"मैंने दोनों वृतांत सुने और मेरे दिल में यह ख्याल और भी पक्का हो गया कि सभ्यता केवल हुन्नर के साथ एब करने का नाम है। आप बुरे-से बुरे काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं, तो आप सभ्य हैं, सज्जन हैं, जैन्टलमेन हैं। अगर आप में यह सिफ़त नहीं तो आप असभ्य हैं, गँवार हैं, बदमाश हैं। यही सभ्यता का रहस्य है।" [११३]

मुंशीजी की इस कहानी से भवानी प्रसाद मिश्र की "जाहिल मेरे बाने" कविता स्मृति में कौंध जाती है। यथा-

"मैं असभ्य हूँ क्योंकि खुले नंगे पांवों चलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि धूल की गोदी में पलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि चीरकर धरती धान उगाता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि ढोल पर बहुत जोर से गाता हूँ

\- - - - - - - -

आप सभ्य हैं क्योंकि आग बरसा देते हैं भू पर
आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी
आप सभ्य हैं क्योंकि ज़ोर से पढ़ पाते हैं पोथी
आप सभ्य हैं क्योंकि जबड़े खून सने हैं।" [११४]

प्रेमचंद की यह कहानी आज के समाचार पत्रों में खबरें ही प्रासंगिक है। कई बार या दौ सौ-पाँच सौ की रिश्वत लेनेवाला व्यक्ति पकड़ा जाता है और उसे कैद होती है दूसरी तरफ करोड़ो रूपये "कोफिन" में खा जानेवाले देशभक्त, देशसेवक और राजनेता कहलाते हैं।

(१३) सती : ---

"सती" कहानी सन् १९२७ के मार्च में माधुरी में प्रकाशित हुई

थी।[११५] इस कहानी के द्वारा प्रेमचंद यह प्रस्थापित करना चाहते है कि दलित जातियों में भी कुछ ऐसे पात्र होते हैं जिनमें हमें मानव-गौरव और मानव-अस्मिता के दर्शन होते हैं। अच्छे गुण किसी जाति-विशेष की बपौती नहीं हैं। प्रस्तुत कहानी की मुलिया एक ऐसा ही पात्र है। मुलिया अतीव सुंदर है। सुंदरता के साथ शीलवान भी है। उसका पति कल्लू काला-कलूटा और कुरूप है परंतु मुलिया अपने पति को जी-जान से चाहती है। मुलिया की दृष्टि में तो कलुआ संसार भर के आदमियों से अच्छा है ओर कलुआ भी मूला पर सौ-सौ प्राण न्यौछावर करता है। वह समझता है कि पूर्व जन्म के किन्हीं पुण्यों से उसे ऐसी सुंदर और संस्कारी पत्नी मिली है।

परंतु मुलिया और कल्लू के सुखी संसार में राजा के कारण आग लग जाती है। राजा कल्लू का चचेरा भाई है। वह रूपवान है, रसिक है, बातचीत में कुशल है और विशेषतः स्त्रियों को रिझाने की कला में माहिर है।[११६] देवर होने के नाते राजा जब तक मुलिया से हँसी मजाक करता रहता है और मुलिया भी इसी संबंध के नाते उससे कभी-कभार बतिया लेती है। परंतु उसके मन में पाप नहीं हैं। उधर राजा सोचता है कि भैया कुरूप होने के कारण भाभी उसकी ओर खींच सकती है। एक दिन मौका पाकर राजा मुलिया से कहता है- ''भाभी, भैया तुम्हारे जोग न थे।'' उसके जवाब में मुलिया कहती है-''भाग में तो वह लिखे थे, तुम कैसे मिलते?''[११७] राजा मुलिया की इस बात को सुनकर प्रसन्न हो जाता है। वह अपने पापी मनमें सोचता है कि पंछी दाना चुग सकता है। दूसरी ओर मुलिया के मनमें कोई पाप नहीं था।

उत्तर प्रदेश में तीज के त्यौहार का बड़ा महत्व होता है। कल्लू मुलिया के लिए लट्ठे की साड़ी लाता है। वह कोई अच्छी साड़ी लाना चाहता था, पर रूपये न थे और बज़ाज ने उधार नहीं दिया। दूसरी ओर राजा मुलिया के लिए एक सुंदर चुनरी ले आता है, क्योंकि वह एक अंग्रेज के यहाँ खानसामा था और उसे अच्छी तनख्वाह मिलती थी। मुलियाने पहले तो

मना कर दिया, परंतु राजाने कहा कि यदि वह साड़ी नहीं लेगी तो वह जहर खाकर मर जायेगा। अतः राजा का मन रखने के लिए वह साड़ी रख लेती है। किन्तु उसे क्या मालूम यही साड़ी उनके जीवन में जहर घोल देगी। जब कल्लू को इस बात का पता चलता है तब मुलिया की ओर से वह सशंकित हो जाता है और शंका की ओर से वह उसके अंतःस्थल में जा बैठता है। कहा गया है- "Over doubts are Traitors अर्थात् शंका मनुष्य को गुमराह करती है। उस दिन से कल्लू का व्यवहार बदल जाता है। वह ताड़ी, शराब, चरस के कुछंद पर चल पड़ता है। इतना ही नहीं बाजारू सस्ती औरतों के पास भी जाने लता है। उसके कारण उसे उपदंश हो जाता है। गरीबी में बीमारी कोढ़ के खाज्ञ की तरह होती है। गरीबी के कारण ठीक से इलाज नहीं हो पाता। रोग भयंकरता से बढ़ने लगा कि आवलों में मवाद पड़ गया। उनमें से दुर्गन्ध आने लगी। मुलिया जी जान से सेवा करती थी। ऊपर से गृहस्थी चलाने के लिए मेहनत मजदूरी भी करनी पड़ती थी मुलिया की स्नेहमयी सेवा के कारण कल्लू का भ्रम अब टूट चुका था परंतु तब तक में बहुत देर हो चुकी थी। और अंततः एक दिन कल्लू की मृत्यु हो जाती है। मुलिया बहुत विलाप करती है। उन्माद की अवस्था में वह कहती है- "है भगवान ! तुमसे इतना भी न देखा गया। उस पर न्यायी और दयालु कहलाते हैं। इसी लिए तुमने जन्म दिया ! यही खेल खेलने के लिए ! हाय नाथ ! तुम तो इतने निष्ठुर न थे ! मुझे अकेली छोड़कर चले जा रहे हो ! हाय ! अब कौन मूला कहकर पुकारेगा। अब किसके लिए कुँए से पानी खींचूगी ! किसे बैठाकर खिलाऊँगी, पंखा ढुलाऊँगी सब सुख हर लिया, तो मुझे भी क्यों नहीं उठा लेते !" [११८]

दूसरी ओर राजा की स्त्री भी मर गई। वह तो दो-चार दिन के बाद छैला बनकर फिर से छूटे सांड़ की तरह धुमने लगा। कल्लू को मरे छः महिने हो गये थे। मुलिया अपने कमाती है, खाती है और अपने घरमें पड़ी रहती है। रात को एकांत में रो लिया करती है। एक दिन राजा

मुलिया के यहाँ जाकर सीधे ही कहता है- ''भाभी, अब तो मेरी अभिलाषा पूरी करोगी या अभी कुछ बाकी है? अब तो भैयाभी न रहे। इधर मेरी घरवाली भी सिधार गई ! मैंने तो उसका गम भूला दिया, तुम भैया के नाम को कब तक रोती रहोगी?'' ११९

राजा के इस प्रस्ताव पर मुलिया जो जवाब देती है, उसका जो पुण्य प्रकोप है, वह उसके सतीत्व को प्रमाणित करता है। यथा-''भैया नहीं रहे तो क्या हुआ; भैया की याद तो है, उनका प्रेम तो है, उनकी सूरत तो दिलमें है, उनकी बातों तो कानों में है। तुम्हारे लिए और दुनिया के लिए वह नहीं हैं, मेरे लिए वह अब भी वैसे ही जीते-जागते हैं। मैं अब भी उन्हें वैसे ही बैठे देखती हूँ। पहले तो देह का अंतर था, अब तो मुझसे और नगीच हो गये है और ज्यों-ज्यों दिन बीतेगें और भी नगीच होते जाएंगे। भरे-पूरे घर में दाने की कौन कदर करता है। जब घर खाली हो जाता है, जब मालूम होता है कि दाना क्या है। पैसेवाले पैसे की कदर क्या जानें। पैसे की कदर तब होती है, जब हाथ खाली हो जाता है, तब आदमी एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ता है। तुम्हें भगवान ने दिल ही नहीं दिया, तुम क्या जानो, सोहबत क्या है। घरवाली को मरे अभी छः महीने भी नहीं हुए और तुम साँड़ बन बैठे। तुम मर गये होते, तो इसी तरह वह भी अब तक किसी के पास चली गयी होती? मैं जानती हूँ कि मैं मर जाती, तो मेरा सिरताज ''जन्म'' भर मेरे नाम को रोया करता। ऐसे ही पुरूषों की स्त्रियाँ उन पर प्राण देती हैं। तुम जेसे सोहदों के भाग में पत्तल चाटना लिखा हैं; चाटो; मगर खबरदार, आज से मेरे घर में पाँव न रखना। नहीं तो जान से हाथ धो ओगे ! बस, निकल जाओ।'' १२०

कल्लू और मुलिया दलित जाति के हैं। दलित जातियों में विधवा विवाह एक आम बात है। दूसरे मुलिया को कल्लू से कोई संतान भी नहीं थी। ऐसी अवस्था में कोई दूसरी स्त्री होती तो पुर्नविवाह कर लेती, परंतु मुलिया के मनमें कल्लू के लिए सच्चा प्यार है। वह जी-जान से उसे मोहब्बत करती थी और मृत्यु के बाद तो वह और भी उसके नजदीक

पहुँच जाती है। इस प्रकार प्रेम की दिव्यता और पवित्रता का चित्रण यहाँ एक छोटी जाति की स्त्री में दिखाकर प्रेमचंद यह सिद्ध करते हैं कि ऊँचे और दिव्य भाव सभी जातियों में कहीं-न-कहीं मिल जाते हैं। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं,पर बिल्कुल नहीं होते ऐसा नहीं हैं।

(१४) मंदिर : ---

"मंदिर" कहानी चाँद पत्रिका में मई सन् १९२७ में प्रकाशित हुई थी।[१२१] जिस प्रकार "सती"कहानी में दलित स्त्री के पति प्रेम की दिव्यता को उद्‌धाटित किया गया है, ठीक उसी प्रकार यहाँ दलित स्त्री के मातृप्रेम की दिव्यता को रेखांकित किया गया है। सुखिया का पति पहले ही स्वर्ग सिधार चुका है। साल भर के भीतर दूसरे दो बालक गंगाजी की गोद में सौंप चुकी थी। अब उस अभागिन के जीवन का एक मात्र आधार यही बालक था। जो तीन दिन से बीमार था। तीन दिन से उसने आँखे तक न खोली थीं और तीन दिन से सुखिया के मुँह में भी अन्न का एक दाना न गया था। बालक का नाम था जियावन, किन्तु वही मरणासन्न अवस्था में था।

सुखिया के मनमें तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। किस देवी के शरण में जाय, किस देवता की मनौती करे, उसके विचारों में उसे झपकी आ जाती है, और देखती क्या है कि उसका पति बालक के सिरहाने खड़ा होकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कह रहा है- "रो मत सुखिया ! तेरा बालक अच्छा हो जायेगा। कल ठाकुरजी की पूजा कर दे, वही तेरे सहायक होंगे।"[१२२] उसी समय जियावन की आँखे खुल जाती है। बालक पानी मांगता है। सुखिया दौड़कर कटोरे में पानी लाकर उसे पिलाती है। दिनभर जियावन की तबियत अच्छी रही। उसने थोड़ी-सी खिचड़ी खायी। सुखिया ने समझा बच्चा अच्छा हो गया। दो-एक दिन में जब पैसे हाथ में आ जायेंगे , ठाकुर जी की पूजा कर लाऊँगी, ऐसा वह सोचती है। परंतु

संध्या समय जियावन की तबियत फिर खराब होती है और तब सुखिया के मन में शंका उत्पन्न होती है कि ठाकुर जी की पूजा में विलंब के कारण ही बालक मुरझा रहा है। अतः वह पूजा के सामन की तैयारी में लग जाती है। फूल तो जमींदार के बगीचे में मिल गये। तुलसीदल द्वार पर ही था। ठाकुर जी के भोग के लिए मिष्ठान्न चाहिए। चढ़ाने के लिए भी कम-से-कम एक आना चाहिए। सारा गाँव छान मारा, किन्तु पैसे उधार न मिले। आखिर हताश होकर चाँदी के कड़े बनिये की दूकान पर गिरवी रखे। पूजा का सामान तैयार करके थाली सजाकर सुखिया मंदिर की ओर चली पंरतु पुजारीजी उसको मंदिर में पूजा नहीं करने देते क्योंकि वह चमारिन थी। यहाँ पर लेखक ने एक भक्त महोदय की टिप्पणी दी है- "मार के भगा दो चुड़ैल को। भरभष्ट करने आयी है, फेंक दो थाली-वाली। संसार में आग ही आग लगी हुई है, चमार भी ठाकुरजी की पूजा करने लगेंगे, तो पिरथी रहेगी कि रसातल को चली जायेगी।"[१२३] तो दूसरे भक्त महाशय बोल पड़ते है- "अब बेचारे ठाकुरजी को भी चमारों के हाथ का भोजन करना पड़ेगा। अब परलय होने में कुछ कसर नहीं है।"[१२४] इस प्रसंग का बड़ा सटीक वर्णन प्रेमचंदजीने किया है। यथा- "सुखिया खड़ी काँप रही थी और यहाँ धर्म के ठेकेदार लोग समय की गति पर आलाचनाएँ कर रहे थे। बच्चा मारे ठंड के उसकी छाती में घुसा जा रहा था, किन्तु सुखिया वहाँ से हटने का नाम न ले रही थी। ऐसा मालूम हो रहा था मानो उसके दोनों पाँव भूमि में गड़ गये हैं। रह-रहकर उसके हृदय में ऐसा उद्‌गार उठता था, मानो जाकर ठाकुरजी के चरणों पर गिर पड़े। ठाकुर जी क्या इन्हीं के हैं, हम गरीबों का उनसे कोई नाता नहीं है, ये लोग होते कौन हैं रोकनेवाले, पर यह भय होता था कि इन लोगों ने कहीं सचमुच थाली-वाली फेंक दी तो क्या करूँगी? दिल में ऐंठ कर रह जाती थी। सहसा उसे एक बात सूझी। वह वहाँ से कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे अंधेरे में छिपकर इन भक्तजनों के जाने की राह देखने लगी।" [१२५]

सब लोगों के हट जाने पर सुखिया पुजारी जी की मिन्नत समाजत

करती है, परंतु पुजारी जी को गाँव के लोगों का डर है। किन्तु सुखिया जब कहती है कि उसके पास एक रूपिया है, तब पुजारी जी कुछ पिघलते हैं। लोगों के भय के कारण ठाकुरजी के चरणों में तो नहीं गिरने देते परंतु सुखिया को एक जंतर देते हैं और कहते हैं कि इस जंतर का दाम तो बहुत है पर वह उसे एक रूपये में दे देंगे। जंतर को बच्चे के गले में बांध लेना। बच्या ठीक हो जायेगा। सुखिया ने दो रूपिये पर कड़े गिरवी रखे थे एक पहले ही भंजा चुकी थी दूसरा पुजारीजी को भेंट कर दिया और जंतर लेकर मन को समझाते हुए घर लौट आयी।

परंतु रात को जियावन का ज्वर और भी बढ़ गया और रात के तीन बजते-बजते उसके हाथ-पाँव ठंडे पड़ने लगे। अतः सुखिया जियावन को लेकर ठाकुरजी की मंदिर की ओर चल पड़ती है। मंदिर पर ताला पड़ा हुआ था। सुखिया कहीं से ईंट उठा लाती है और ताले को तोड़ डालती है। पुजारी जाग जाते हैं और "चोर-चोर"का हल्ला बोल देते हैं। हल्ला-गुल्ला सुनकर लोग दौड़ आते हैं। तब पुजारीजी कहते है- "अब अनर्थ हो गया ! सुखिया मंदिर में जाकर ठाकुरजी को भ्रष्ट कर आयी !" [१२६] लोग लातों और घूसों से सुखिया को मारने लगे। बलिष्ठ ठाकुरने सुखिया को जोर का धक्का दिया। उकसे हाथ से बच्चा छूटकर जमीन पर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गए। सुखियाने जब देखा कि जियावन अब नहीं रहा तब दोनों मुठ्ठियों को बंद कर दांत पीसते हुए वह चित्कार कर उठती है- "पापियों, मेरे बच्चे के प्राण लेकर दूर क्यों खड़े हो? पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता। मेरे छूने से ठाकुरजी अपवित्र हो जायेंगे। मुझे बनाया, तो छूत नहीं लगी? लो, अब कभी ठाकुरजी को छूने नहीं आऊँगी। ताले में बंद रखो, पहरे बैठा दो। हाय, तुम्हें दया छू भी नहीं गयी। तुम इतने कठोर हो ! बाल-बच्चेवाले होकर भी तुम्हें एक अभागिन माता पर दया न आयी ! तिस पर धरम के ठेकेदार बनते हो ! तुम सब के सब हत्यारे हो, निपट हत्यारे। डरो मत, मैं थाना-पुलिस नहीं जाऊँगी। मेरा न्याय

भगवान करेंगे, अब उन्हीं के दरबार में फरियाद करूँगी।'' [१२७]

बालक की मृत्यु से सुखिया भी मूर्छित होकर गिर पड़ती है और उसके भी प्राण निकल जाते हैं। इस प्रकार बच्चे के लिए वह अपने प्राण दे देती है। यह एक मार्मिक कहानी है। धर्म और शास्त्र के नाम पर हमारी समाज-व्यवस्था में दलितवर्ग के साथ कितना अमानुषी व्यवहार होता था उसका यथार्थ आकलन इस कहानी में हुआ है। जिस समय यह काहनी लिखी गई है उस समय अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर कई आंदोलन चल रहे थे। अतः प्रेमचंदजी की सामयिक जागरूकता भी इससे प्रकट होती है।

(१५) मंत्र : ---

''मंत्र'' कहानी ''विशालभारत''में सन् १९२८ के मार्च में प्रकाशित हुई थी।[१२८] प्रस्तुत कहानी में लेखकने धर्म परिवर्तन के मुद्दे को उठाया है। यह वह समय है जब तबलीगवाले दलित हिंदुओं को मुसलमान बना रहे थे। तब आर्यसमाज तथा हिंदूमहासभावालों ने शुद्धि-अभियान चलाया था। पंडित लीलाधर चौबे इस शुद्धि-अभियान के कर्णधार थे। उनकी जबान में जादू था। जातीय गौरव-गान उनके व्याख्यानों का प्रधान गुण था। मंच पर आते ही भारत के प्राचीन गौरव और पूर्वजों की अमर-कीर्ति का राग छेड़ देते थे। चंदा इक्ट्ठा करने में उन्हें महारत हासिल थी। हिंदू सभा के नाम पर पंडितजी जो चंदा वसूल करते थे उसका आधा वह अपने परिवार तथा सैर-सपाटों में खर्च कर देते थे। हिंदूसभा को भी कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। सभा के लोग सोचते कि जो कुछ भी मिला है वह पंडितजी के प्रयत्नों से मिला है। वह उद्योग न करते तो इतना भी न मिलता। [१२९] यहाँ पर प्रेमचंद की वस्तुवादी दृष्टिने भारतीय राजनीति में चंदे के नाम पर चलनेवाले भ्रष्टाचार को उद्घाटित किया है।

पं.लीलाधरजी का शुद्धि-अभियान चल रहा था, उस समय खबर आयी

कि मद्रास प्रांत में तबलीग वालों ने तूफान मचा रखा है। हिंदुओं के गाँव-के-गाँव मुसलमान होते जा रहे हैं। हिंदूसभा में रखबली मच गई और उन्होंने कुछ कार्यकरों के साथ पंडितजी को मद्रास जाने की प्रार्थना की। पंडितजी अपने सेवकों के साथ मद्रास जाने के लिए उद्यत हुए। हरएक बड़े स्टेशन पर सेवकों का सम्मानपूर्ण स्वागत हुआ। कई जगह थैलियाँ मिली। रतलाम की रियासत ने शामियाना दिया। बड़ौदा ने एक मोटर दी कि सेवकों को पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े। यहाँ तक की मद्रास पहुँचते-पहुँचते सेवा दल के पास एक माकूल रकम के अतिरिक्त जरूरत की कितनी ही चीजें-जमा हो गईं। मद्रास पहुँचकर आबादी से दूर मैदान में हिंदूसभा का पड़ाव रहा। शामियाने पर राष्ट्रीय झंडा लहराने लगा। सेवकों ने अपनी-अपनी वर्दियाँ निकाली, स्थानिक धन कुबेरों ने दावत के सामान भेजे, रावटियाँ पड़ गईं। चारो ओर ऐसी चहल-पहल हो गई, मानो किसी राजा का केम्प हो। [१३०]

कहानी में दलित संदर्भ यहाँ से आता है अछूतों की एक बस्ती के समीप सेवकदल का केम्प लग जाता है। कई हजार आदमियों का जमावड़ा हो जाता है, जिनमें अधिकांश अछूत ही थे। ऊँचे वर्ण के हिंदूलोग कालीनों पर बैठे हुए थे। अछूतों के लिए अलग से टाट बिछाये हुए थे। पंडित लीलाघर अपना धुँआधार व्याख्यान दे रहे थे कि हम सब लोग प्राचीन भारतीय ऋषिओं की संताने हैं। तब सहसा एक अछूत बूढ़ा उठकर पंडितजी से प्रश्न करता है कि क्या हम लोग भी उन्हीं ऋषियों की संतान हैं? पंडितजी ''हाँ''में जवाब देते हैं, तब बूढ़ा पुनः प्रश्न करता है कि हम सब जब उन्हीं महात्माओं की संतान हैं तो फिर ऊँच-निच में इतना भेदभाव क्यों? तब लीलाधर कहते हैं कि अज्ञान में पड़कर हम उन महात्माओं को भूल गए हैं। तब बूढ़ा कहता है कि अब तो आपकी निद्रा टूटी हे, क्या हमारे साथ भोजन करोगे? मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह करोगे? [१३१]

बूढ़े के प्रश्नों से लीलाधर अपनी बात को पलट देते हैं क ''जब तक

तुम्हारे आहार व्यवहार में परिवर्तन न हो जाय, हम तुमसे विवाह का सम्बन्ध नहीं कर सकते, माँस खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च-वर्ण के हिन्दुओं में मिल सकते हो।" [१३२]

पं.लीलाधर की बात पर बूढ़ा जो कहता है उसमें दलित चेतना के सूत्र मिलते हैं। यथा-"हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, तो रात-दिन नशे में डूबे रहते हैं, माँस के बिना कौर नहीं उठाते; और कितने ही ऐसे हैं, जो एक अक्षर भी नहीं पढ़े हैं, पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ। उनसे विवाह-सम्बन्ध करने में आपको कदाचित् इनकार न होगा। जब आप खुद अज्ञान में पड़े हुए हैं तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है। जाइए, अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके किए न होगा। हिंदू-समाज में रहकर हम कितने ही विद्वान, कितने ही आचारवान हो जायँ, आप हमें यों ही नीच समझते रहेंगे।" [१३३]

यह कहकर बूढ़ा वहाँ से चला गया और उसके साथ और भी कई लोग उठ खड़े हुए। चौबेजी का मंचगान समाप्त हुआ। उसी रात तबलीगवालों ने हिन्दूसभा के केम्प पर जानलेवा हमला किया। चौबेजी के साथी भाग गये। चौबेजी को भी लोग मरा समझकर छोड़ गये। दूसरे दिन प्रातः काल उसी बूढ़े ने पंडितजी को लहूलुहान हालत में कराहते हुए पाया। बूढ़ा गाँव में दौड़कर गया और कई आदमियों को बुलाकर उनकी मदद से पंडितजी को अपने घर उठवा कर ले गया। महीनों की सेवा-सुश्रुषा से पंडितजी ठी हो गये। तीन महीने गुजर गये न तो हिंदूसभावालों ने पंडितजी की खबर ली, न ही घरवालों ने। सभा के मुखपत्र में उनकी मृत्यु पर आँसू बहाये गये। उनका स्मारक बनाने के लिए चंदा खोल दिया गया। पंडितजी घर लौटने की तैयारियाँ कर रहे थे कि गाँव पर प्लैग का आक्रमण हुआ। गाँव के तीन आदमी बीमार हो गए। बूढ़ा चौधरी भी उन्हीं में था। गाँव के लोगों में अंध मान्यता थी कि ऐसी बीमारियाँ दैवी

कोप के कारण होती हैं और इसलिए वह रोगियों को छोड़कर चले जाते हैं। रोगियों को बचाना देवताओं से बैर मोड़ लेना था। पंडितजी को भी लोगोंने अपने साथ चलने को कहा, परंतु उन्होंने गाँव में रहकर रोगियों की सेवा करने का निश्चय किया। जिस व्यक्तिने उनको मौत के पंजे से छुड़ाया था उसे इस दशामें छोड़कर जाना उन्हें उचित न लगा।

शहर गाँव से काफी दूर था डॉक्टर और दवाका कोई प्रबंध नहीं था। पर पंडितजी किसी तरह शहर पहुँचते हैं। डॉक्टर बिना पैसों के दवा न दे रहा था। ऐसे में आखिर एक शेठ पंडितजी के शुद्ध संस्कृत उच्चरणों से प्रभावित होकर उनकी सहायता करता है। पंडितजी दवाइयाँ लेकर गाँव पहुँचते हैं, मानो हनुमानजी संजीवनी बूँटी लेकर पहुँच रहे हों, ऐसी प्रसन्नता उनके मन में थी। पंडितजी की सेवा-सुश्रुषा और दवाइयों से तीनों रोगी चंगे हो जाते हैं पंडितजी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल जाती है। लोग मानते हैं कि पंडितजी ने यम-देवता से घोर संग्राम करके इन आदमियों को बचा लिया था। पंडितजी के इस व्यवहार ने वहाँ का वातावरण ही बदल दिया। इस नई ज्योति ने तबलीग के मुल्लाओं का रंग फीका कर दिया ''वहाँ एक ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुर्दों को जीला देता था, जो अपने भक्तों के कल्याण के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर सकता है। ..... इस ज्वलंत उपकार के सामने जन्नत और अखूबत (भातृ-भाव) की कोरी दलिलें कब तक ठहर सकती थीं ? पंडितजी अब वह अपने ब्राह्मणत्व पर धमंड करनेवाले पंडितजी न थे। इन्होंने शुद्रों और भीलों का आदर करना सीख लिया था। उन्हें छाती से लगाते हुए अब पंडितजी को घृणा न होती थी। अपने घर अंधेरा पाकर ही यह इस्लामी दीपक की ओर झुके थे। जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो उन्हें दूसरों के यहाँ जाने की क्या जरूरत थी। ....लोगों के आचरण आप ही आप सुधरने लगे। पंडितजी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म आती थी- ''मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल एवं पवित्र आत्माओं को

शुद्धि के ढोंग से अपमानित नहीं कर सकता। यही मंत्र था, जो उन्होंने इन चांडालों से सीखा था और इस बल से वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।''[१३४]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी के द्वारा प्रेमचंदजी यह प्रस्थापित करना चाहते हैं कि उपदेश और व्याख्यानों से कुछ नहीं होता। दलितों के धर्म परिवर्तन को प्रेमपूर्ण व्यवहार और बराबरी की भावना से ही रोका जा सकता है। जब तक कोई उनको नीच समझता रहेगा, उनके प्रति सच्ची सदभावना पैदा नहीं हो सकती। सेवा-सुश्रुषा और प्रेम से ही उनको जीता जा सकता है।

(१६) लांछन : ---

वस्तुतः ''लांछन'' कहानी के मुख्य पात्र तो मुंशी श्यामकिशोर तथा देवीरानी हैं। केवल मुन्नू मेहतर के कारण कहानी दलित-संदर्भ से जुड़ती है। मुन्नू मेहतर मुंशी श्याकिशोर के यहाँ साफ-सफाई के काम के लिए आता है। मुन्नू जबतब देवीरानी की तारीफ़ करता रहता है। उसकी चापलूसी से प्रसन्न हो देवी भी कभी उसे एक-दो रूपये दे देती है। मुन्नू देवी की कमजोरी को भाँप लेता है। एक स्थान पर वह कहता है- ''अब सरकार से क्या कहूँ। बड़ी-बड़ी खत्रानियों को देखता हूँ, मगर गोरेपन के सिवाय और कोई बात नहीं, उनमें यह नमक कहाँ, सरकार।'' [१३५]

मोहल्ले में एक रजामियाँ है। उसकी जूते की दूकान है। अच्छी खासी आमदनी है। देवी पर उसकी बूरी निगाह है। देवी को बरगलाने के लिए वह मुन्नू मेहतर का प्रयोग करता है। मुन्नू मेहतर और रजामियों दोनों मिलकर ऐसी स्थितियाँ पैदा करते हैं कि देवी घर छोड़ने पर मजबूर हो जाती है। बाबू श्याम किशोर नहीं चाहते कि देवी मुन्नू से किसी प्रकार का संबंध रखे। उसके कारण तो वे उस मुहल्ले को भी छोड़ देते हैं, परंतु मुन्नू उस दूसरे मुहल्ले का भी पता लगा लेता है और किसी-न-किसी बहाने से

देवी को मिलता रहता है। बाबू श्यामकिशोर देवी के एक संतान है- शारदा। बड़ी प्यारी-सी, छोटी-सी लड़की है। रजामियाँ उसके लिए खिलौने भेजता है। इन्हीं खिलौने को अपनी सहेलियो को दिखाने के लिए शारदा जा रही थी, तब अचानक मोटर के नीचे आ जाने से उसकी मृत्यु हो जाती है। बाबू श्याकिशोर मुन्नू मेहतर और रजामियाँ को लेकर अपनी पत्नी को शंकाशील दृष्टि से देखते हैं। इसके कारण उनके दांपत्यजीवन में तनाव पैदा होता है। लड़ाई-झगड़े होते हैं, मारपीट होती है। फलस्वरूप देवी एक दिन घर से भाग जाती है। मुन्नू उसे रजामियाँ के यहाँ ले जाता है। रजामियाँ उसे एक अलग मकान दिलाने की बात करता है। कहानी में ऐसे संकेत मिलते हैं क इस प्रकार मुन्नू और रजामियाँ मिलकर देवी को पथभ्रष्ट कर देते हैं। दूसरी ओर पत्नी को घर में न पाकर बाबू श्यामकिशोर सामाजिक लांछन से बचने के लिए गंगातट की ओर चल पड़ते हैं। सांकेतिक ढंग से बताया गया है कि बाबू श्यामकिशोर ने गंगा में डूबकर आत्महत्या कर ली होगी। कहानी का अंतिम वाक्य है - ''श्यामकिशोर चुपचाप नीचे उतरे, न किसी से कुछ कहा, न सुना, द्वार खुले छोड़ दिए और गंगा-तट की ओर चले।'' [१३६]

प्रेमचंद के कहानी- साहित्य में दलित संदर्भ मिलते हैं, परंतु प्रेमचंद की दृष्टि दुराग्रही नहीं है। सभी ऊँची जाति के लोग बुरे होते हैं और सभी दलितवर्ग के लोग अच्छे होते हैं, ऐसा नहीं है। अच्छे-बुरे लोग हर जाति, देश, संप्रदाय में होते हैं। प्रस्तुत कहानी इसका उदाहरण है। यहाँ मुन्नू मेहतर की नीचता के कारण एक हँसता-खेलता परिवार बरबाद हो जाता है।

(१७) लोकमत का सम्मान : ---

''लोकमत का सम्मान''कहानी मानसरोवर भाग-७ में संग्रहीत है। प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंदजी ने बेचू नामक धोबी के चरित्र का चित्रण किया

है। बेचू को रूखी-सूखी खाकर भी अपना गाँव प्राणों से प्यारा था। लोगों से अवहेलना, अवसानना, फटकार, मार मिलती थी; फिर भी वह प्रसन्न था, क्योंकि एक तरफ जहाँ उसे वृद्धा किसान स्त्रियों की गालियां खानी पड़ती थीं, वहाँ गाँव की बहुओं से "बेचू दादा" कहकर पुकारे जाने का गौरव भी प्राप्त होता था। [१३७] "आनंद और शोक के प्रत्येक अवसर पर उसका बुलावा होता था, विशेषतः विवाहों में तो उसकी उपस्थिति वर और वधू से कम आवश्यक न थी। उसकी स्त्री घर में पूजी जाती थी,द्वार पर बेचू का स्वागत होता था। वह पेशवाज पहने, कमर में घंटिया बांधे, साजिन्दों को साथ लिये एक हाथ मृदंग पर और दूसरा अपने कान पर रखकर जब तत्काल-रचित बिरहे और बोल कहने लगता तो आत्मसम्मान से उसकी आँखें उन्मत्त हो जाती थीं।" [१३८]

इस प्रकार अपनी गरीबी-विपन्न अवस्था में भी वह खुश था। उसके पास इस्तरी तक लाने के पैसे नहीं थे। अतः दूसरे धोबियों से इस्तरी मांगकर काम चलाता था। पर यही बेचू एक दिन शहर चला जाता है। "धेले पर कपड़े धोकर भी वह अपनी दशा से संतुष्ट रह सकता था, किन्तु जमींदार के नौकरों की क्रूरता और अत्याचार कभी-कभी इतने असह्य हो जाते थे कि उसका जी गाँव छोड़कर भाग जाने को चाहने लगता था। ..... अगर कभी बिना इस्तरी किये ही कपड़े ले जाता तो उसकी शामत आ जाती थी। मार पड़ती, घण्टों चौपाल के सामने खड़ा रहना पड़ता, गालियों की वह बौछार पड़ती कि सुननेवाले कानों पर हाथ रख लेते, उधर से गुजरनेवाली स्त्रियां लज्जा से सिर झुका लेंती।" [१३९]

परन्तु जेठ के महीने में पानी की किल्लत के कारण एक जमींदार साहब के कपड़े देने में कुछ ज्यादा दिन लग गये, उस पर उनके कारिन्दे ने बेचू की जबरदस्त पिटाई की। उसे आठ दिन तक हल्दी और गुड़ पीना पड़ा। नवें दिन उसने सब ग्राहकों के कपड़े जैसे-तैसे धो दिये और अपना बोरिया-बंधना संभालकर, किसी को कुछ कहे-सुने बिना रात को पटना की राह ले ली। [१४०]

बेचू शहर में गया तो उसे खूब काम मिलने लगा। धुलाई भी अच्छी मिल जाती थी। कभी-कभी तो उसकी एक दिन की मजदूरी देहात की वार्षिक आय से बढ़ जाती थी।[१४१] "लेकिन तीन-चार महीने में ही उसे शहर की हवा लगने लगी। पहले नारियल पीता था; अब एक गुड़गुड़ी लाया। नंगे पाँव जूते से वेष्टित हो गये और मोटे अनाज सेपाचन-क्रिया में विघ्न पड़ने लगा। पहले कभी-कभी तीज-त्यौहार के दिन शराब पी लिया करता था, अब थकान मिटाने के लिए नित्य उसका सेवन होने लगा। स्त्री को आभूषणों की चाट पड़ी। और धोबिनें बन-ठनकर निकलती हैं, मैं किसीसे कम हूँ। लड़के खोंचे पर लट्टू हुए, हलवे और मूंगफली की आवाज़ सुनकर अधीर हो जाते।"[१४२] मकान-मालिक ने भी किराया बढ़ा दिया, लिहाजा वही बात हुई की "शहर की कमाई शहर खाये"। फलतः अधिक कमाई के जुगाड़ में उसकी नीयत भी डोल गयी और वह भी उन सब गोरखधंधों में फंसने लगा जिसमें उसकी बिरादरी के दूसरे शहरी धोबी फंसे हुए थे।

बेचू के पड़ोस में एक वकील के मुहर्रिर मुंशी दाताराम रहते थे। उनके घर से बेचू का अच्छा धरोबा हो गया था। एक बार मुंशीजी को किसी बारात में जाना था। उन्होंने बाकी सब तैयारियाँ तो कर लीं, पर कपड़ों में अटक पड़ गयी। दातारामजी ने बेचू को अपनी समस्या बतायी। वह किसी तरह किसी और ग्राहक के कपड़े देने के लिए राजी हो गया। मुंशीजी अपने साथ बेचू को भी बारात में ले गये। उसे वे सबके सामने "चौधरी" कहकर पुकारते थे। मुंशीजी के कपड़ों ने तो बारातियों की शान पर चार चांद लगा दिये। जहाँ देखो उसकी चर्चा। परन्तु आधी रात के बाद साजिन्दों में से एक अताई आकर कहने लगा किये कपड़े उसके हैं। मुंशीजी पहले तो साफ मुकर गये, पर बाद में अताई की बात को मान लिया। अताई से चिरौरी करने लगे कि किसी प्रकार वह उनकी इज्जत बचा लें। तब अताई कहता है: "कपड़े की मुझे फिकर नहीं, आपकी दुआ से अल्लाह ने बहुत दिया है। रईसों को खुदा सलामत रखे,

उनकी बदौलत पाँचों ऊँगलियाँ धी में हैं। ....मैं सिर्फ इतना जानना चाहता हूँ कि कपड़े आपने किससे पाये? मैंने बेचू धोबी को धोने के लिए दिये थे। ऐसा तो नहीं हुआ कि कोई चोर बेचू के घर से उड़ा लाया हो। ....बेचू ने अपने हाथ से आपको हरगिज कपड़े न दिय होंगे। वह ऐसा छिछोरापन नहीं करता। मैं खुद उससे इस तरह का मुआमला करना चाहता था, हाथों पर रूपये रख देता था, पर उसने कभी परवाह न की। साहब रूपये उठाकर फेंक दिये और ऐसी डांट बताई कि मेरे होश उड़ गये। इधर का हाल में नहीं जानता, क्योंकि अब मैं उससे कभी बातचीत नहीं करता। पर मुझे यकीन नहीं आता वह इतना बदनीयत हो गया होगा। इसलिए आपसे बारबार पूछता हूँ कि आपने यह कपड़े कहाँ पाये?" [१४३]

बेचू यह सब सुन रहा था। उसे ऐसा लगा कि उसकी आत्मा गहरी नींद से जाग रही है। वह सोचता है: "दुनिया मुझे कितना ईमानदार, कितना सच्चा, कितना निष्कपअ समझती है और मैं कितना बेईमान, कितना दगाबाज हूँ। इसी झूठे इलजाम पर मैंने वह गाँव छोड़ा जहाँ बापदादा से रहता आया था। लेकिन यहाँ आकर दारू-शराब, धी-चीनी के पीछे तबाह हो गया।" [१४४] अतः बेचू जब बारात से लौटा तो एक दूसरा ही मनुष्य हो गया था, या यों कहिए कि वह फिर अपनी खोयी हुई आत्मा को पा गया था।

बेचू अब करकसर से रहने लगा। पर बेटे मलखान के ब्याह की बात आयी। बिरादरी के लोग रिश्ता ठीक करने आ रहे थे। घर में पैसे थे नहीं। ज़ितने थे खाना वगैरह में उठ चुके थे। बेचू की स्त्री कहती है कि मेहमानों के लिए दारू कहाँ से आयेगी? बिना दारू के वे लोग भला खाने उठेंगे? कितनी नामूसी होगी। बेचू कहता है कि नामूसी हो, चाहे बदनामी हो, दारू लाना मेरे बस की बात नहीं है। बेचू की स्त्री सलाह देती है कि वह दुशाला जो धुलने के लिए आया है, किसी बनिये के यहाँ गिरवी रख आओ, चार-पाँच रूपये तो मिल ही जायेंगे। दो-चार पर बेचू टस से मस नहीं होता। वह साफ कह देता है: "न, यह मुझसे न होगा,

चाहे दारू मिले ।" [१४५] अंत में बेचू देखता है कि उसकी स्त्री जमीन से खोदकर कुछ निकाल रही है। बेचू मुस्कुराता हुआ बाहर चला जाता है।

इस प्रकार "लोकमत का सम्मान" बेचू अपने ढंग से करता है, उसकी पत्नी अपने ढंग से। "लोकमत का सम्मान"करके ही वह गाँव में रह रहा था। और लोकमत के सम्मान के कारण ही वह बाद में सच्चाई और ईमानदारी के रास्ते पर आता है। जहाँ तक दलित-संदर्भ का प्रश्न है उसमें दलितों पर होने वाले अत्याचारों तथा दलितों में पायी जानेवाली कमजोरियों और रूढियों का चित्रण लेखक ने वस्तुवादी ढंग से किया है।

(१८) बौड़म : ---

यह कहानी अप्रैल १९२३ में प्रकाशित हुई थी। [१४६] इस कहानी में तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों और गहमागहमियों का उल्लेख मिलता है। कहानी आत्मकथात्मक ढंग से लिखी गई है। कथा- नायक "मैं" जब देवीपुर जाते हैं, तब ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब "बौड़म" की चर्चा न निकलती हो। कथा-नायक लेखक को बड़ी इच्छा होती है कि वे कभी बौड़म को मिले। नाम तो उसका मुहम्मद खलील है, पर घरवाले तथा गाँववाले उसे बौड़म के नाम से ही जानते हैं।

एक दिन लेखक किसीको पूछते हैं कि आखिर यह बौड़म है कौन? कोई पागल है क्या ? उसके उत्तर में एक सज्जन कहते हैं: "महाशय, पागल क्या है, बस बौड़म है। घर में लाखों की सम्पत्ति है, शक्कर की एक मिल सिवान में है, दो कारखाने छपरे में हैं, तीन-तीन, चार-चार सै के तलब वाले आदमी नौकर हैं, पर इसे देखिए फटेहल घूमा करता है।" [१४७]

वस्तुतः देखा जाय तो मुहम्मद खलील एक सच्चा, नेक और ईमानदार मुसलमान है; किन्तु झूठे, मक्कार और बेईमान लोगों की इस दुनिया में, जो ऊपर-ऊपर से तो सच्चाई, ईमानदारी, धर्म और मजहब की बातें करते

हैं, पर भीतर से रंगे सियार है, नंबरी बदमाश है- ''बौड़म'' के नाम से जाना जाता है। इस ढोंगी और फरेबी समाज में वह एक प्रकार से ''मिस-फिट''है, अजनबी है।

जहाँ तक दलित-विमर्श का संबंध है, दो प्रसंगों में उसकी चर्चा आती है। एक तो वह जहाँ लेखक देवीपुर के लोगों से कहते हैं कि ''गांधीजी ने आज्ञा दी है कि हिन्दुओं में छूत-छात का भेद न रहे, नहीं तो देश को और अभीन देखने पड़ेंगे।'' [१४८] इस पर गाँव के लोग कहते हैं: ''न हुआ बौड़म नहीं आपका गला न छोड़ता। आपका खाना-पीना कठिन हो जाता। कोई इससे ऐसी बातें करें तो रात रात बैठा रहे।'' [१४९]

जब लेखक बौड़म से मिलते हैं, तब एक दिन इसी संदर्भ में बात निकलती है। इस बात का संबंध दलित-विमर्श से है। यथा- ''मेरे चाचा साहब को जवानी में एक चमारिन से ताल्लुक हो गया था। उससे दो बच्चे, एक लड़का और एक लड़की पैदा हुए। चमारिन लड़की को गोद में छोड़कर मर गयी। तब से इन दोनों बच्चों की मेरे यहाँ वही हालत थी जो यतीमों की होती है। कोई बात न पूछता था। उनको खाने-पहनने को भी न मिलता। बेचारे नौकरों के साथ खाते और बाहर झोंपड़े में पड़े रहते थे। जनाब, मुझसे यह देखा न गया। मैंने उन्हें अपने दस्तरखान पर खिलाया और अब भी खिलाता हूँ। घर में कुहराम मच गया। जिसे देखिए मुझ पर त्योरियाँ बदल रहा है। मगर मैंने भी परवाह न की। आखिर है वह भी तो हमारा ही खून। इसीलिए मैं बौड़म कहलता हूँ।'' [१५०] गोया चमारनि को रख लेना, उससे बच्चे पैदा करवा लेना, उसके साथ ऐश करना यह बौड़मपना नहीं है; उसके मरने के बाद उसके बच्चों को पालना यह बौड़मपना है। इस प्रकार इस तथाकिन ''बौड़म'' में हमें दलित-चेतना के दर्शन होत हैं।

कहानी के अन्त में कथा-नायक लेखक कहते हैं- ''अब मैं आपको इसी नाम से पुकारूँगा। आज मुझे मालूम हुआ कि बौड़म देवताओं को कहा जाता है। जो स्वार्थ पर आत्मा की भेंट कर देता है वह चतुर है,

बुद्धिमान है। जो आत्मा के सामने, सच्चे सिद्धान्त के सामने, सत्य के सामने, स्वार्थ की, निंदा की परवाह नहीं करता वह बौड़म है, निर्बुद्धि है।" [१५१] इस प्रकार इस कहानी का अंतर्सूत्र भी "सभ्यता का रहस्य" कहानी से मिलता-जुलता है।

(१९) देवी : ---

"देवी" कहानी अप्रैल १९३५ में "चाँद" में प्रकाशित हुई थी। [१५२] "मानसरोवर" के किसी भी भाग में इसे सम्मिलित नहीं किया गया है। "गुप्तधन" भाग-२ में यह कहानी मिलती है। प्रस्तुत कहानी की तुलिया चमारिन वस्तुतः देखा जाय तो "सती" और "घासवाली" की नायिका मुलिया चमारिन ही है और "घासवाली" कहानी से तो काफी मिलती-जुलती है। "घासवाली" कहानी का ठाकुर चैनसिंह यहाँ ठाकुर बंसीसिंह हो गया है। तुलिया के सौन्दर्य और युवानी से मुग्ध ठाकुर बंसीसिंह उससे प्रणय-निवेदन करता है। उसके उत्तर में तुलिया उसे वह फटकर सुनाती है कि ठाकुर बंसीसिंह आत्महत्या कर लेता है।

वस्तुतः तुलिया ने अपने पति को देखा तक नहीं है। उसकी चिठ्ठियों के सहारे ही वह अपना जीवन काट रही थी। ठाकुर बंसीसिंह की मृत्यु के बाद उसका भाई गिरधरसिंह सारी जायदाद हथिया लेता है और अपनी भाभी बंसीसिंह की विधवा को घर से निकाल देता है। प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर जब ठकुराइन सतीत्व की सीमा को लांघने के लिए भी उद्यत हो जाती है, तब तुलिया अपनी स्त्री-सहल बुद्धि का प्रयोग करके ऐसा रास्ता निकालती है कि ठकुराईन तथा उसका यों दोनों का शील-सम्मान बच जाता है। वह अपने बुद्धिप्रयोग से ठकुराइन को उसकी जायदाद वापस दिलाती है। कहानी का अंत इस प्रकार होता है :

"गिरधर ने एक छन तुलिया के चेहरे की तरफ देखा, जिस पर इस समय एक दैवी तेज विराज रहा था, और एकाएक जैसी उसकी आँखो के

सामने से पर्दा हट गया और सारी साजिश समझ में आ गयी। उसने सच्ची श्रद्धा से तुलिया के चरणों को चूमा और बोला- समझ गया तुलिया, तू देवी है।'' [१५३]

इस कहानी के दलित-विमर्श को स्पष्ट करते हुए डॉ.कांति मोहन कहते है : ''इस कहानी के पीछे भी कहानी का उदेश्य यही दिखाना नज़र आता है कि चमारों में भी तुलिया जैसी देवी हो सकती है जो जातिगत स्वाधीनता के रहते हुए भी ऐसे पति के नाम पर पूरी जिन्दगी गुजार सकती है जिसकी उसने सूरत तक नहीं देखी। यही नहीं, एक मुसीबतजदा औरत को उसका अधिकार दिलाने के लिए वह अपने सतीत्व को भी दाँव पर लगा सकती है और अपने बुद्धिबल से ठाकुर गिरधरसिंह जैसे अन्यायी और दुर्बुद्धि व्यक्ति को भी सही राह पर ला सकती है।'' [१५४]

(२०) जुरमाना : ---

यह कहानी भी मानसरोवर के किसी भी भाग में संकलित नहीं है। यह कहानी ''कफ़न'' कहानी संग्रह के आठवें संस्करण में उपलब्ध होती है। अमृतराय ने ''कलम का सिपाही'' के अंत में जो प्रेमचंद की कहानियों की सूची उनके प्रकाशन वर्ष के साथ दी है, इसमें भी यह कहानी शामिल नहीं है।

इस कहानी की विशेषता यह है कि इसके पुमुख अछूत पात्र- हुसैनी और अल्लारखी, मुस्लिम मेहतर है। ये दोनों म्युनिसिपैलिटी के सफाई कर्मचारी हैं। प्रेमचंद मजदूरों और मेहनतकश जनता के अन्य तबकों की भांति सफाई कर्मचारियों की समस्याओं से भी पूरी तरह से वाकिफ थे। ''कर्मभूमि'' उपन्यास में भी उन्होंने काशी में मेहतरों की हड़ताल का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमचंद मेहतरों में भी लाना चाहते थे। प्रस्तुत कहानी में अल्लारखी और हुसैनी के बीच यह जो वार्तालाप है, वह इस बात का प्रमाण है :

"मैं डरती हूँ, बरखास्त न कर दे। मेरी जीभ जल जाय।
कहाँ से कहाँ.....
बरखास्त करना है, कर दे, उसका अल्लाभला करे। कहाँ तक रोये?
तुम मुझे नाहक लिये चलते हो। सबकी सब हसेंगी।
बरखास्त करेगा तो पूछूंगा नहीं कि किस इलजाम पर बरखास्त करते हो, गाली देते किसने सुना? कोई अंधेर है, जिसे चाहे बरखास्त कर दे, और कहीं सुनवाई न हुई तो पंचों से फरियाद करूंगा। चौधरी के दरवाजे पर सर पटक दूंगा।
ऐसी ही एकता होती तो दारोगा इतना जरीमाना करने पाता?
जितना बड़ा रोग होता है उतनी बड़ी दवा होती है, पगली।" [१५५]

वस्तुतः हुआ था यों कि सफाई विभाग का दारोगा खैरात अली उक्त दोनों कर्मचारियों का जब-तब जुरमाना करता रहता था। अतः अल्लारखी दारोगा के ऐसे अत्याचारों से बहुत दुःखी थी। ऐसे में हुसैनी के साथ बातचीत करते हुए उसके मुंह से दारोगा के लिए गाली निकल जाती है। उसी समय दारोगा वहाँ से गुजर रहा था। अब अल्लारखी घबरा जाती है। दारोगा वैसे ही इतने जुरमाने करता रहता था, अब तो शायद उसे नौकरी से ही बरखास्त कर देगा, ऐसी दहशत उसके मन में बैठ जाती है। पर महीने के अंत में जब वह तलब लेने पहुँचती है, उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहता जब बिना जुरमाने के पूरी तलब उसे मिलती है। पहली बार पूरी तलब पाकर अल्लारखी दारोगा की नेकनीयती की कायल हो जाती है।

(२१) मेरी पहली रचना : ---

यह कहानी भी "मानसरोवर" के किसी भाग में शामिल नहीं है। वह

अमृतराय की कहानियों वाली सूची में भी नहीं है। शायद उन्होंने इसे कहानी माना ही न हो। परंतु यह कहानी भी "कफ़न" कहानी संग्रह में संग्रहीत है। यह कहानी वस्तुतः एक वास्तविक घटना पर आधारित है। यह घटना तब घटी थी जब प्रेमचंद १३-१४ साल के रहे होंगे। प्रेमचंदजी के रिश्ते के मामू, उनकी सौतेली मां के भाई, उनके यहाँ ही पड़े रहते थे। नवाब (प्रेमचंद का बचपन का नाम) को वह फूटी आँखों न सुहाते थे। मामू गाँव की एक चमारिन को फंसा लेते हैं और उसके साथ खूब रंगरलियां खेलते थे। मुहल्ले के चमारों को इस बात का पता चलता है और वे पंचायत करके मामू साहब को सबक सिखाने को फैसला करते हैं। एक दिन वे दोनों को रंगे हाथों पकड़ लेते हैं और मामू की इतनी मरम्मत करते हैं कि एक महीने तक हल्दी और गुड़ पीते रहे।

यह उस जमाने की बात है जब उच्च जाति के लोग निम्नजाति की स्त्रियों को अपनी संपत्ति समझते थे। निम्नजाति की बहुत-सी स्त्रियां भी इस मिथ्या चेतना की शिकार थीं, और उन्हें इसमें किसी प्रकार का अनौचित्य नजर नहीं आ रहा था। अतः मामू जो करते हैं वह आम बात है, उसमें लोगों को भी कोई अनुपयुक्त बात नहीं लगती। किन्तु इसके विरोध में चमारों का संगठित होकर उठ खड़ा होना और ऊँची जाति के एक व्यक्ति को सबका सिखाने की बात का सोचना, यह एक असाधारण बात थी। प्रेमचंद ने मामूसाहब वाली धटना को लेकर एक नाटक लिखकर उनके सिरहाने रख दिया था। मामूसाहब ने उस नाटक को जला डाला था। पर इस व्यंग्य का ऐसा असर पड़ा था कि मामू एक दिन अपना बोरिया-बकचा उठाया और चल पड़े। व्यंग्य की ताकत को नवाब ने कदाचित् पहली बार जाना। "कलम का सिपाही" में अमृतराय इसका जिक्र कुछ यों करते हैं : "नवाब तब तक शरीर से दुर्बल थे और अब शायद पहली बार उन्हें अपने भीतर की इस नयी शक्ति की चेतना हुई जो मारपीट कर सकने से कहीं ज्यादा भयंकर थी। जो काम लाठी-डंडे से नहीं हो सकता वह काम यह कलम कर सकता है। मैं कमजोर हूँ तो क्या,

यह एक बड़ा हथियार मुझे मिल गया ! अब मुझे कोई सताकर तो देखे, मैं उसकी कैसी मिट्टीपिलीद करता हूँ। ऐसी मार मारूँगा कि पानी भी मांगते नहीं बनेगा।'' [१५६]

बहरहाल कहनी का उदेश्य चमारों में आयी उस नयी चेतना को रेखांकित करना है।

(२२) कफ़न : ---

यह प्रेमचंद की एक सर्वोत्कृष्ट कहानी है। हिन्दी कहानियों का शायद ही ऐसा कोई संकलन होगा, जिसमें इस कहानी को न समाविष्ट किया गया हो। यह कहानी उनको विश्वसाहित्य के श्रेष्ठ कहानीकारों में स्थापित करती है। मोपांसा, गोर्की, चेखव की पंक्ति में वे विराजित होत हैं। परंतु आश्चर्य की बात यह है कि ''मानसरोवर'' के किसी भी भाग में यह संकलित नहीं है। इस कहानी का प्रकाशन सन् १९३६ में हुआ। सर्वप्रथम उसका प्रकाशन ''जामिया'' में हुआ था। बादमें उसे ''कफ़न'' कहानी संग्रह में संकलित किया। ''मंजूषा''(संपादक-अमृतराय), ''कथान्तर''(संपादक डॉ.परमानंद श्रीवास्तव) तथा अन्य कई संकलनों में यह कहानी संग्रहीत है।

इसकी कुल कहानी इतनी है। घीसू और माधव चमार बाप-बेटे हैं। नंबरी कामचोर है। गाँव के खेतों में चोरी-चखारी करके और थोड़ी-बहुत मेहनत-मजदूरी करके अपना गुजरान चलाते हैं। माधव की जब शादी हो जाती है, तब उसकी पत्नी मेहनत-मजदूरी करके इन दो बेगैरत इन्सानों का पेट भरती है। उसके बाद तो ये दोनों और भी कामचोर हो जाते हैं। ये इतने आलसी और कामचोर हैं कि कोई उनको मजदूरी पर भी नहीं बुलाता। किसान सोचते हैं कि ये खुद तो काम नहीं करेंगे, दूसरे मजदूरों को भी उनकी छूत लग जायेगी। लेखक के ही शब्दों में- ''गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे मगर इन दोनों को लोग उसी वक्त बुलाते जब दो आदमियों

से एक का काम पाकर भी संतोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता।'' [१५७] और साथ ही व्यंग्यात्मक चुटकी भी लेते हैं- ''अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें संतोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न होती।'' [१५८]

कहानी के दो मुख्य मुद्दे हैं- एक तो इन दोनों का कामचोर, निखट्टू, बेगैरत हो जाना; ओर दूसरे उनका अमानवीयता की ओर संक्रमित होना। प्रथम का कारण तो लेखक ने कहानी में ही दे दिया है: ''जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवाले की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कही ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मंडली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मंडली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उंगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे और किसानों-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती। और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग फायदा तो नहीं उठाते।'' [१५९]

और दूसरा मुद्दा है उनका अमानवीय व्यवहार। बहू प्रसव-पीड़ा में कराह रही है, बल्कि दम तोड़ रही है, पर इनको उसका किसी प्रकार का दर्द नहीं है। वे तो आलू भुनकर खाने में लगे हुए हैं। बल्कि माधव तो एक प्रकार से उसके मरने की राह देख रहा है- ''मरना ही है, तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूं?'' [१६०] तब घीसू कहता है- ''तू बड़ा बेदर्द है बे ! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई?''[१६१] पर इसका अर्थ यह नहीं कि घीसू को मरनेवाली की कोई ज्यादा चिन्ता है। वह तो माधव को अंदर इसलिए भेजना चाहता है कि

तब तक में वह एक-दो आलू ज्यादा खा ले। और माधव यह जो बहाना बताता है कि उससे उसका दर्द देखा नहीं जाता। वह भी बहाना ही है। वस्तुतः वह सोचता है कि यदि वह देखने जायेगा तो उसका बाप ज्यादा आलू खा लेगा। बाप सेर तो बेटा सवा सेर। और बाद में उसके मर जाने पर उसके कफ़न के लिए बटोरे पैसों पर ये लोग जयाफत उड़ाते हैं। माँस-मच्छी खाते हैं, शराब पीते हैं। ये सब करने के बाद माधव की मानवता कुछ बुलबुलाती है और वह उसके कफ़न लायेंगे, जिन्होंने पहले कफ़न के लिए पैसे दिये थे, पर हाँ, अब पैसे उनके हाथ में नहीं आयेंगे। [१६२]

इस अमानुषिकता के संदर्भ में डॉ.पारूकान्त देसाई कहते हैः ''घीसू और माधव का व्यवहार अमानवीय है, पर लेखक यहाँ मन में एक प्रश्न जगाता है कि माधव और घीसू की अमानवीयता का मूल हमारी समाज-व्यवस्था में ही है। सैंकड़ों-हजारों वर्षों से समाज का एक वर्ग शोषित-दलित जीवन जी रहा है, जिनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार हो रहा है, तो ऐसी स्थिति में यदि वे जानवर से भी गया-गुजरा व्यवहार करे तो उसमें क्या आश्चर्य?'' [१६३]

डॉ.कांतिमोहन ''कफ़न''की इस समस्या के संदर्भ में यह सोचते हैं कि माधव और घीसू वैसे तो चमार बताये हैं, परन्तु उनका अछूत-समस्या से कोई संबंध नहीं है। वस्तुतः माधव और घीसू सर्वहारा वर्ग के उस तबके के प्रतिनिधि हैं जिनको लुंपन सर्वहारा कहा जाता है। [१६४] यहाँ सवाल यह भी उठता है कि यदि शोषित-दलित जीवनानुभवों ने उन्हें अमानवीय बनाया है तो फिर दूसरे दलित भी माधव और घीसू की तरह क्यों नहीं हो जाते ? तो उसका कारण यह है कि दूसरे दलित अभी सवर्णों द्वारा रचित शास्त्रानुमोदित भ्रान्त धारणाओं और मोहजाल से बाहर नहीं आये हैं।

इस कहानी में प्रेमचंद ने यह भी एक प्रश्न ध्वनित किया है कि समाज में कामचोरी की प्रवृत्ति क्यों बढ़ती हैं? जिस समाज में श्रम का महत्व कम

आंका जायेगा और मुफ्तखोर मजे लुटेंगे, उस समाज में माधव और घीसू जनमेंगे और पनपेंगे और हम देख रहे हैं कि ऐसे माधव और घीसू हर क्षेत्र में बढ़ रहे हैं। क्या शिक्षा के क्षेत्र में नहीं है ? युनिवर्सिटी के शिक्षक जब केवल अतीत-अध्ययन के सहारे ही आगे बढ़ते जायेंगे, तो नया पढ़ने-लिखने की जेहमत कौन उठायेगा ? ये और ऐसे अनेक प्रश्न उकेरती है यह कहानी।

निष्कर्ष

अध्याय के समग्राकलन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते है : -

(१) प्रेमचंद की जिन कहानियों में प्रमुखतया दलित-जीवन का चित्रण मिलता है, उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : - ठाकुर का कुआँ, पूस की रात, घासवाली, सौभाग्य के कोड़े, मंदिर, सद्गति, दूध का दाम, बाबाजी का भोग, सवासेर गेहूँ , सभ्यता का रहस्य, शूद्रा, सती, लांछन, आगा-पीछा, गुल्ली-डंडा, मंत्र, लोकमत का सम्मान, बौड़म, देवी, जुरमाना, मेरी पहली रचना, कफ़न आदि आदि।

(२) इन कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें दलित पात्रों के माध्यम से उनके जीवन की सामान्य समस्याओं को उकेरा गया है- जैसे आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न। इन कहानियाँ में धटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा ऊँची जातियों के पात्रों की तुलना में दलित पात्रों के गुणों और महत्व को रेखांकित किया गया है।

(३) इनमें कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें अछूत समस्या के कुछ विशिष्ट मुद्दों को उठाया गया है। इन मुद्दों में मंदिर-प्रवेश, सामाजिक निर्योग्यताओं, सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह जैसे मुद्दे मुख्य हैं। ये वे मुद्दे हैं जो उस कालखंड में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के भी मुख्य और महत्वपूर्ण मुद्दे थे।

(४) अछूतों के पशुवत् जीवन के लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और

सामाजिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। इस शास्त्रानुमोदित वर्ण-व्यवस्था को बदले बिना दलितों का उद्धार असंभव है।

(५) दलित जातियों के संदर्भ में "उच्च" जातियों के पूर्वग्रहों का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि अच्छे-बुरे लोग हर समय में, हर जाति में और हर धर्म और संप्रदाय में पाये जाते हैं। इन तथाकथित निम्नजातियों में "मंत्र" के बूढ़े भगत, "अलग्योझा" के रग्धू जैसे पुरूष; तथा "सती" की मुलिया और "देवी" की तुलिया जैसी सती-साध्वी स्त्रियाँ मिलती हैं। दूसरी ओर ऊँची जातियों में जहाँ कुछ अच्छे लोग होते हैं, वहाँ एक-से-एक पतित और नंबरी घाघ लोग भी मिलते है।

(६) स्त्री-पुरूष बराबरी की बात तथा-कथित "उच्च" जातियों की तुलना में दलित जातियों में कुछ अधिक परिमाण में मिलती है। क्योंकि यहाँ स्त्री भी पुरूष के जीवन-संघर्ष में कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। वह कठपुतली नहीं, एक जीवंत व्यक्तित्व है।

: संदर्भानुक्रम :

(१) कमल का सिपाही : अमृतराय : पृ.४३-४४

(२) जागरण : नवम्बर- १९३२ : संपादकीय

(३) वही : संपादकीय

(४) वही : संपादकीय

(५) द्रष्टव्य : महात्मा-खंड-३ : डी.जी.टेन्डुलकर : पृ.४५०

(६) वही : पृ.४५२

(७) वही : पृ.४५५

(८) विविध प्रसंग भाग-१ : प्रेमचंदः पृ.४६४-४६६

(९) विविध प्रसंग भाग-२ : प्रेमचंदः पृ.४५७-४५८

(१०) विविध प्रसंग भाग-१ : प्रेमचंदः पृ.५६-५७

(११) वही : पृ.५७
(१२) द्रष्टव्य : प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांति मोहन : पृ.११९
(१३) सेवासदन : प्रेमचंद : पृ. ३२०
(१४) प्रेमाश्रम : प्रेमचंद : पृ. १८९
(१५) कर्मभूमि : प्रेमचंद : पृ. २०६
(१६) द्रष्टव्य : गोदान : प्रेमचंद : पृ.२०६
(१७) वही : पृ.२०८
(१८) मानसरोवर भाग-१ : पृ.१०९
(१९) वही : पृ.१०८
(२०) वही : पृ.१०७
(२१) वही : पृ.१०८
(२२) वही : पृ.१०८-१०९
(२३) पूस की रात : मानसरोवर भाग-१ : पृ.१२०
(२४) वही : पृ.१२०
(२५) वही : पृ.१२०
(२६) वही : पृ.१२५
(२७) द्रष्टव्य : वही : पृ.१२५
(२८) वही : पृ.१२१
(२९) घासवाली : मानसरोवर भाग-१ : पृ.२४४
(३०) वही : पृ.२४४
(३१) वही : पृ.२४४
(३२) वही : पृ.२४६
(३३) वही : पृ.२४७
(३४) वही : पृ.
(३५) वही : पृ.२४५
(३६) वही : पृ.२४५
(३७) वही : पृ.२५३

(३८) मानसरोवर भाग-१ : गुल्ली-डंडा : पृ.१३३

(३९) वही : पृ.१३४

(४०) वही : पृ.१३८

(४१) वही : पृ.१३९

(४२) विविध प्रसंग-भाग-२ : पृ. ४७५-४७६

(४३) दूध का दाम : मानसरोवर भाग-२ : पृ.१६९

(४४) वही : पृ.१५४

(४५) दूध का दाम : मानसरोवर भाग-२ : पृ.१५४

(४६) वही : पृ.१५४

(४७) वही : पृ.१५६

(४८) वही : पृ.१५७

(४९) वही : पृ.१५४

(५०) वही : पृ.१५८

(५१) वही : पृ.१५९

(५२) वही : पृ.१५९

(५३) मानसरोवर भाग-२ : पृ.२५३

(५४) वही : पृ.२५३

(५५) वही : पृ.२५४

(५६) शूद्रा : मानसरोवर भाग-२ : पृ.२५५

(५७) वही : पृ.२५५

(५८) वही : पृ.२५९

(५९) वही : पृ.२६५

(६०) द्रष्टव्य : शूद्रा : मानसरोवर भाग-२ : पृ.२६६

(६१) द्रष्टव्य : वही : २६८

(६२) वही : पृ.२६९

(६३) वही : पृ.२६९

(६४) बाबाजी का भोग : मानसरोवर भाग-३ : पृ.२५०

(६५) वही : पृ.२५०

(६६) वही : पृ.२५१

(६७) वही : पृ.२५१

(६८) वही : पृ.२५१

(६९) द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : पृ.६६४

(७०) मानसरोवर भाग-३ : पृ.१७२

(७१) वही : पृ.१७३

(७२) वही : पृ.१७५

(७३) वही : पृ.१७५

(७४) वही : पृ.१८०

(७५) वही : पृ.१८२

(७६) द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : पृ.६६४

(७७) मानसरोवर भाग-४ : पृ.१०

(७८) वही : पृ.११

(७९) वही : पृ.१३

(८०) द्रष्टव्य : वही : पृ.१०

(८१) वही : पृ.११

(८२) वही : पृ.१२

(८३) वही : पृ.१३-१४

(८४) वही : पृ.१४

(८५) वही : पृ.१५

(८६) वही : पृ.१६

(८७) Life and Works of Premchand : Dr. Manohar Bandopadhyay : P.69-70

(८८) कलम का सिपाही : पृ.६६४

(८९) मानसरोवर भाग-४ : सवा सेर गेहूँ : पृ.१३७

(९०) वही : पृ.१३८

(९१) वही : पृ.१३८

(९२) वही : पृ.१३८

(९३) वही : पृ.१३८

(९४) वही : पृ.१४४

(९५) वही : पृ.१४१

(९६) वही : पृ.१३९

(९७) वही : पृ.१३९

(९८) वही : पृ.१३९

(९९) Life and Works of Premchand : Dr. Manohar Bandopadhyay : P.69

(१००) कमल का सिपाही : मानसरोवर भाग-४ : पृ. ९४

(१०१) आगा-पीछा : मानसरोवर भाग-४ : पृ.९४

(१०२) वही : पृ.८७

(१०३) वही : पृ.९१

(१०४) वही : पृ.९१

(१०५) वही : पृ.८९

(१०६) कमल का सिपाही : पृ.६६४

(१०७) द्रष्टव्य : सभ्यता का रहस्य : मानसरोवर भाग-४ : पृ.१४३-१४४

(१०८) वही : पृ.१४४

(१०९) वही : पृ.१४४

(११०) वही : पृ.१४४

(१११) वही : पृ.१४५

(११२) वही : पृ.१४८

(११३) वही : पृ.१४८

(११४) आज के लोकप्रिय कवि : भवानी प्रसाद मिश्र : संपादक-डॉ.विजयबहादुर सिंह : पृ.२६

(११५) कमल का सिपाही : पृ.६६४

(११६) द्रष्टव्य : सती : मानसरोवर भाग-४ : पृ.१०५

(११७) वही : पृ.१०५

(११८) वही : पृ.११०

(११९) वही : पृ.१११

(१२०) वही : पृ.१११

(१२१) कमल का सिपाही : पृ.६६२

(१२२) मंदिर : मानसरोवर भाग-५ : पृ.र

(१२३) वही : पृ.१४

(१२४) वही : पृ.४

(१२५) वही : पृ.४

(१२६) वही : पृ.६

(१२७) वही : पृ.७

(१२८) कमल का सिपाही : पृ.६६२

(१२९) द्रष्टव्य : मंत्र : मानसरोवर भाग-५ : पृ.३२

(१३०) द्रष्टव्य : वही पृ.३३

(१३१) द्रष्टव्य : वही पृ.३४

(१३२) वही पृ.३४

(१३३) वही पृ.३४

(१३४) वही पृ.४३

(१३५) लांछन : मानसरोवर भाग-५ : पृ.९०

(१३६) वही पृ.११२

(१३७) द्रष्टव्य : मानसरोवर भाग-७

(१३८) वही पृ.२१३

(१३९) वही पृ.२१३

(१४०) द्रष्टव्य : वही पृ.२१४

(१४१) द्रष्टव्य : वही पृ.२१५

(१४२) वही पृ.२१५

(१४३) वही पृ.२१८

(१४४) वही पृ.२१८

(१४५) वही पृ.२१९

(१४६) द्रष्टव्य : कमल का सिपाही : पृ.६६१

(१४७) बौड़म : मानसरोवर भाग-८ : पृ.१५९

(१४८) वही पृ.१५९

(१४९) वही पृ.१५९

(१५०) वही पृ.१६१-१६२

(१५१) वही पृ.१६५

(१५२) द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : पृ.६६०

(१५३) गुप्तधन : भाग-२ : पृ.२५१

(१५४) प्रेमचंद और अछूत समस्या : डॉ.कांतिमोहन : पृ.१६७

(१५५) कफ़न कहानी संग्रह : पृ.३१

(१५६) कलम का सिपाही : पृ.३०

(१५७) कफ़न : कथांतर : सं.डॉ.परमानंद श्रीवास्तव : पृ.४५

(१५८) वही पृ.४५

(१५९) वही पृ.४६

(१६०) वही पृ.४४

(१६१) वही पृ.४४

(१६२) द्रष्टव्य : वही पृ.५१

(१६३) युगनिर्माता प्रेमचंद तथा कुछ अन्य निबंध : डॉ.पारूकान्त देसाई : पृ.७३

(१६४) प्रेमचंद और अछूत समस्या : पृ.१७१